द्वितीय संस्करण, १९४१ ।

युद्ध-जनित
बढा हुआ
मूल्य
बारह आने

: मुद्रक :
श्रीपतराय,
सरस्वती-प्रेस,
बनारस ।

[**परिचय :** भारत में ६ प्रमुख जीवित भाषाएँ हैं जिनका अपना कहानी साहित्य है। इनके अतिरिक्त ४ और ज़बानें भी हैं—आसामी, उड़िया, सिंधी, गुरुमुखी। हमारी योजना यह है कि पहली ६ भाषाओं में प्रत्येक से १० या अधिक सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कहानियाँ एक-एक पुस्तक में संगृहीत की जायँ और इन संग्रहों की यह माला 'गल्प-संसार-माला' के नाम से प्रसिद्ध हो। पहले इन ६ भाषाओं का संग्रह तैयार होगा। १० वें भाग में अंतिम चार ज़बानों की मिली हुई कहानियाँ पूरी की जायँगी। आरंभ में भारत से, इस प्रकार १० भाग हुए। इसके उपरांत संसार की और भाषाओं से कहानियाँ इन पुस्तिकाओं में संगृहीत की जायँगी, जैसे अंग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी, आदि; और यह माला ३-४ वर्षों में संपूर्ण होगी। किन्तु प्रत्येक भाग अपने आप में पूर्ण होगा और इसलिए यह लम्बी अवधि भयंकर न होनी चाहिये। प्रत्येक भाग में २१०-२५० पृष्ठों तक रहेंगे, कागज़ सुंदर, सफेद ग्लेज़ रहेगा; मूल्य बेहद सस्ता, यानी आठ आने प्रति भाग और स्थायी ग्राहकों को **छः आने** में मिलेगा। इस माला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्रामाणिकता है जिसके लिए प्रकाशकों ने सभी साहित्यकारों तथा संस्थाओं से मदद ली है और अथक परिश्रम किया है; जिसके लिए प्रकाशकों का नाम ही पर्याप्त है। इस माला का स्थायी ग्राहक बनना आपका कर्तव्य होना चाहिये क्योंकि इतनी सुरुचिपूर्ण और प्रामाणिक किताबें इस सस्ते मूल्य में हिन्दी में प्राप्य नहीं हैं, तथा इस योजना की सफलता इसी में है कि इसके कम से कम दो हज़ार स्थायी ग्राहक हमें मिल जायँ।]

द्वितीय संस्करण, १९४१ ।

युद्ध-जनित
बढ़ा हुआ
मूल्य
बारह आने

: मुद्रक :
श्रीपतराय,
सरस्वती-प्रेस,
बनारस ।

[**परिचय :** भारत में ६ प्रमुख जीवित भाषाएँ हैं जिनका अपना कहानी साहित्य है। इनके अतिरिक्त ४ और ज़बानें भी हैं—आसामी, उड़िया, सिंधी, गुरुमुखी। हमारी योजना यह है कि पहली ६ भाषाओं में प्रत्येक से १० या अधिक सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कहानियाँ एक-एक पुस्तक में संगृहीत की जायँ और इन संग्रहों की यह माला 'गल्प-संसार-माला' के नाम से प्रसिद्ध हो। पहले इन ६ भाषाओं का संग्रह तैयार होगा। १० वें भाग में अंतिम चार ज़बानों की मिली हुई कहानियाँ पूरी की जायँगी। आरंभ में भारत से, इस प्रकार १० भाग हुए। इसके उपरांत संसार की और भाषाओं से कहानियां इन पुस्तिकाओं में सगृहीत की जायँगी, जैसे अंग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी, आदि; और यह माला ३-४ वर्षों में सपूर्ण होगी। किन्तु प्रत्येक भाग अपने आप में पूर्ण होगा और इसलिए यह लम्बी अवधि भयंकर न होनी चाहिये। प्रत्येक भाग में २१०-२५० पृष्ठों तक रहेंगे, कागज़ सुंदर, सफेद ग्लेज़ रहेगा; मूल्य बेहद सस्ता, यानी आठ आने प्रति भाग और स्थायी ग्राहकों को **छः आने** मे मिलेगा। इस माला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्रामाणिकता है जिसके लिए प्रकाशकों ने सभी साहित्यकारों तथा संस्थाओं से मदद ली है और अथक परिश्रम किया है; जिसके लिए प्रकाशकों का नाम ही पर्याप्त है। इस माला का स्थायी ग्राहक बनना आपका कर्तव्य होना चाहिये क्योंकि इतनी सुरुचिपूर्ण और प्रामाणिक किताबें इस सस्ते मूल्य में हिन्दी में प्राप्य नहीं हैं, तथा इस योजना की सफलता इसी में है कि इसके कम से कम दो हज़ार स्थायी ग्राहक हमें मिल जायँ।]

उर्दू का गल्प-साहित्य

उर्दू-गल्प की गति-विधि और विकास को जानने के लिए हमें प्रेमचन्द को केन्द्र-स्थल मानकर उनके इधर-उधर दृष्टिपात करना होगा। इधर, अर्थात् प्रेमचन्द के पहले, आधुनिक गल्प अभी नन्हें-से जल-स्रोत का रूप भी धारण न कर सकी थी और इधर, अर्थात् प्रेमचन्द के बाद वह अपने पूर्ण विकास को पहुँचकर विविध धाराओं में प्रवाहित हो रही है।

उर्दू-गल्प का प्राचीन इतिहास

प्रेमचन्द तक पहुँचने के लिए उर्दू-कहानी दो-एक युगों से गुज़री है, जिसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दे देना ज़रूरी है, किन्तु इससे पहले एक बात जान लेनी चाहिये और वह यह कि प्रेमचन्द से पूर्व कथा-साहित्य उपन्यास और कहानी के दो पृथक्-पृथक् भागों में विभक्त न हुआ था। इस काल में कहानी से हमारा तात्पर्य उस कथा से है, जिसका उद्देश्य पाठकों और श्रोताओं का मनोरंजन-मात्र है, फिर चाहे उसे सुनाने में महीने ही क्यों न लग जायँ और सहस्रों पृष्ठ पाकर भी वह चाहे अपूर्ण ही क्यों न रह जाये।

अनुवाद-युग

उर्दू में भी गल्प-साहित्य का आरम्भ दूसरी भाषाओं की भाँति रोमांस पूर्ण (Romantic) कथाओं तथा दृष्टान्तों से होता है। जब पेट भरा हो, जीवन में सबसे बड़ा प्रश्न अर्थात् भूख का प्रश्न सताता न हो तो मनुष्य के लिए अपनी वासना की और आध्यात्मिक भूख को शान्त करना ही शेष रह जाता है। उस हालत में जिन कथाओं का

सृजन होगा उनका उद्देश्य किसी हद तक मानव की इन दोनो प्रवृत्तियों की शान्ति ही होगा। वास्तव में पहली के लिए दूसरी की ज़रूरत है। धर्म का मेरे विचार में धन से गहरा सम्बन्ध है। धन अर्थात् खुशहाली वासना को उपजाती है, और वासना की हवा जब मनुष्य को शाखा से टूटे हुए पत्ते की भाँति इधर से उधर उड़ाये फिरती है और अन्त को पतन के गढे में गिरा देती है, तब धर्म उसे उबारने को आता है। खुशहाल और चिन्ता-रहित होकर मनुष्य पाप के गढ़े में न जा पड़े इसलिए धर्म की सृष्टि हुई और समय आया कि पेट तथा काम की स्वाभाविक भूख के साथ धर्म की अस्वाभाविक भूख भी मानव-जीवन का एक अङ्ग हो गई। यही कारण है कि प्राचीन काल में हमें धार्मिक दृष्टान्त भी मिलते हैं। उर्दू में दोनो तरह की कथाएँ पहले-पहल अनुवाद द्वारा लाई गईं।

मौलिक रचनाएँ

इनशा—अनुवाद और क्लिष्ट भाषा के इस युग में अचानक सैयद इनशा अल्लाह खाँ अपनी सरल भाषा और उर्दू की सबसे पहली महत्त्वपूर्ण मौलिक रचना—'रानी केतकी की कहानी' को लेकर उपस्थित हुए। इनशा अल्लाह खाँ लखनऊ के नवाब वजीर सआदत अली खाँ के दरबारी कवि थे और बहुभाषी भी थे। तत्कालीन उर्दू-गद्य की क्लिष्टता और दुरूहता को भलीभाँति महसूस करते हुए उन्होंने प्रण किया कि वे 'रानी केतकी की कहानी' में एक भी विदेशीय शब्द न आने देंगे और अपने इस प्रयास में वे सफल भी काफी हुए। 'रानी केतकी की कहानी' से पहले सैयद हैदर बख्श हैदरी ने 'तोता' नाम से क कहानी लिखी थी, पर वह 'शुक-सप्तमी' के अंग्रेजी अनुवाद से भावित होकर लिखी गई थी। फोर्ट विलियम से और जो कथित 6 रचनाएँ निकलीं, वे, संस्कृत अथवा फारसी पुस्तकों के आधार ` गई थीं।

'सरूर'—इनशा के बाद मौलिक रचना में मिर्ज़ा रजब अली बेग 'सरूर' ने योग दिया। उनकी 'फ़िसानाये अजायब' सर्वथा मौलिक रचना थी। 'सरूर' की इस कृति में एक खास बात यह थी कि इसकी भूमिका में पहले-पहल तत्कालीन लखनऊ का चित्र खींचा गया। इस पुस्तक की अत्यन्त सुन्दर समालोचनाएँ निकलीं। श्री रामबाबू सक्सेना ने अपने 'उर्दू साहित्य के इतिहास' में 'सरूर' द्वारा खींचे गये लखनऊ के इस चित्र की प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि टेनीसन की कविता डे-ड्रीम (Day dream) से उपमा दी। 'फ़िसानाये अजायब' की दूसरी विशेषता यह थी कि इसकी भाषा में पहली बार कुछ अंग्रेज़ी शब्द और वाक्य आ गये। और कृत्रिम तथा अस्वाभाविक होते हुए भी इसकी भाषा शुद्ध और चित्ताकर्षक है।

नज़ीर अहमद—इस बीच में नवलकिशोर प्रेस से पुरानी तरह के किस्से-कहानियों के साथ-साथ अंग्रेज़ी भाषा के अनुवाद भी प्रकाशित हुए और लोगों की रुचि में कुछ परिवर्तन हुआ और वह पुरानी तरह की दिलचस्प, पर काल्पनिक कहानियों से ऊब गये। तभी मौलवी नज़ीर अहमद ने वास्तविक अर्थों में उर्दू का पहला उपन्यास—जो मानव-जीवन के विभिन्न अङ्गों पर प्रकाश डाले, और जो काल्पनिक होते भी सत्य प्रतीत हो—लिखा। नज़ीर अहमद की सर्वोत्तम पुस्तक 'तौबा तुलसूह' है, जिसमें एक ही कथानक है और पुरानी लीक से दूर हटने का प्रयास किया गया है। नज़ीर अहमद के दूसरे उपन्यास रोमांस (Romance) और नावेल के बीच की कड़ी हैं।

सरशार-युग

१८७८ में मौलवी नज़ीर अहमद की पुस्तकों के ढङ्ग पर एक पुस्तक 'नवाबी दरबार' निकली जिसमें भूले नवाबों की जी खोलकर हँसी उड़ाई गई। उसी वर्ष लखनऊ के प्रसिद्ध दैनिक 'अवध अख़बार' में प० रतननाथ 'सरशार' का प्रसिद्ध उपन्यास 'फ़िसानाए आज़ाद' निक-

लना आरम्भ हुआ। प० रतननाथ 'सरशार' रँगीली तबीयत के हँसमुख व्यक्ति थे, प्राय. पीने के बाद लिखा करते थे, जो लिखते उसे फिर न देखते, यदि क़लम न मिलती तो तिनके ही से लिखते जाते, कभी-कभी बोलते जाते और कातिब लिखता जाता। इस प्रकार यह उपन्यास एक वर्ष में समाप्त हुआ। इस उपन्यास ने उर्दू-संसार में धूम मचा दी और इसके बाद तो उर्दू-संसार उनकी लेखनी की रौ में बह गया—और 'जामे सरशार', 'सैरे कोहसार', 'कामिनी', 'पी कहाँ',—उपन्यास पर उपन्यास पं० 'सरशार' लिखते गये। जब उनका देहान्त हुआ तो लोग पुरानी कहानियों और उपन्यास में कुछ अंतर समझने लगे थे और उर्दू का गद्य साहित्य कई पग आगे बढ चुका था।

आजाद—पं० सरशार अपने युग के अकेले ही महारथी हैं। उनके बाद उस युग में जिन्होंने उपन्यास लिखे भी वे नाम पाने के बावजूद भी उतना ऊँचा न उठ सके। उसी वर्ष अर्थात् सं० १९३७ में जब 'फिसानाये आज़ाद' पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुआ, मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने अपनी एक पुस्तक 'नैरङ्गे ख़याल' समाप्त की। यह उपन्यास न था, दृष्टान्तों की पुस्तक थी। और इसकी भाषा बड़ी सरस और सुन्दर थी। यह पुस्तक दृष्टान्तों की पुरानी पुस्तकों अर्थात् 'अख़लाके हिन्दी', 'खिरद अफ़रोज़' आदि से अनोखी थी।

'शरर'—सं० १९३७ में जब प० 'सरशार' 'अवध अख़बार' से अलग हुए तो उसका संपादन एक नवयुवक अब्दुल हलीम 'शरर' के हाथ में आया। 'शरर' ने पहले-पहल अंग्रेज़ी लेखों को सीधी-सादी उर्दू में लिखना आरम्भ किया। उनका यह काम काफ़ी पसन्द किया गया। पर उपन्यासकार की हैसियत से मौलवी 'शरर' पहले-पहल लोक-प्रिय नहीं हुए। उन्होंने जो सबसे पहला उपन्यास 'दिलचस्प' नज़ीर अहमद की तर्ज़ पर लिखा, वह और सब कुछ था, पर दिलचस्प न था। फिर उन्होंने बंकिम बाबू के प्रसिद्ध बङ्गाली उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' का अनुवाद

किया लेकिन मुन्शी ज्वालाप्रसाद बर्क ने उसी उपन्यास का जो अनुवाद किया, वह उससे सुन्दर था। बर्क ने बंकिम बाबू के दूसरे उपन्यासों का भी अनुवाद किया और जनता ने उन्हें बेहद पसन्द किया। तब मौलवी 'शरर' ने अपना प्रसिद्ध पत्र 'दिलगुदाज़' निकाला और कम-अज़-कम मुसलिम जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए एक नया ढङ्ग अपनाया और वह यह कि मुसलिम देशों की ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी कल्पना शक्ति से उपन्यासों के रूप में लिखना आरम्भ किया और कोशिश यह की कि उसमें मुसलमान नायकों के साथ दूसरे धर्मों की काल्पनिक नायिकाओं का प्रेम प्रकट किया जाय और अन्त में वे नायिकाएँ मुसलिम धर्म को स्वीकार कर लें। मुस्लिम जनता ने इन उपन्यासों की क़द्र भी की और इनके लेखक को उर्दू के 'वाल्टर स्काट' का दर्जा भी दे दिया। 'अज़ीज़ वर्जिना,' 'मनसूर मोहिना' उनके इसी तरह के उपन्यास हैं।

'रुसवा'—इस बीच में मुंशी नौबतराय नज़र ने सुलझी हुई भाषा में अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासों का उर्दू में अनुवाद किया, और भी दो एक लेखकों ने उपन्यास लिखे, पर वे किसी काम के न थे। इन सबमें डाक्टर मुहम्मद हादी 'रुसवा', बी० ए०, डी० लिट् का उपन्यास 'इसरारे दर्बारे हरामपुर' अच्छा रहा। इसके बाद ही साहित्य के क्षितिज पर एक उज्ज्वल नक्षत्र का उदय हुआ, जिसने अपनी प्रतिभा और चमक से देखते-देखते साहित्याकाश को चाँद बनकर देदीप्यमान कर दिया। यह नक्षत्र स्वर्गीय प्रेमचन्द थे।

कहानी के जन्मदाता प्रेमचन्द

उर्दू-गद्य अपने आधुनिक रूप में स्व० प्रेमचन्द की देन है। उस वक्त जब खुद इंग्लिस्तान में भी कहानी लेखकों की संख्या अँगुलियों पर गिनी जाती थी, स्व० प्रेमचन्द ने 'नवाब राय' के नाम से कहानियाँ लिखना आरम्भ किया और अपने साहित्यिक जीवन ही में

कहानी को उसके शिखर पर पहुँचा दिया। प्रेमचन्द के आगमन से ही हम कहानी को उपन्यास से पृथक चीज़ समझना जान गये। प्रेमचन्द के अपने ही शब्दों में—'गल्प एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है, उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा विन्यास, सब उसी एक भाव का पुष्टी-करण करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा वृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उपन्यास की भाँति उसमें सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह रमणीक उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल बूटे सजे हुए हैं ; बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।'

'वर्त्तमान आख्यायिका'--जैसा कि प्रेमचन्द ने एक जगह लिखा, 'मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।' और यह है भी सच। मनुष्य के लिए मनुष्य ही सबसे विकट पहेली है। वह स्वयं अपनी समझ में नहीं आता। किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना किया करता है, अपने ही मन रहस्य खोला करता है। मानव-संस्कृति का विकास भी इसीलिए हुआ कि मनुष्य अपने आपको समझे। प्राचीन काल में, .. कि पहले लिख गया है, या तो सुख-वैभव से सम्पन्न लोग दिमाग़ी ऐय्याशी के लिए प्रेम से सनी, वासना को उभारनेवाली चीज़ें सुनते तथा लिखते थे अथवा धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ उनको आत्मा और परमात्मा के झगड़े में व्यस्त रखती थीं। धर्म कर्म से पृथक मानकर अपने आपको समझने की प्रवृत्ति उनमें थी ; फिर अपने पड़ोसी को, समाज को समझाने की बात तो दूर ही ी। उर्दू के गल्प-साहित्य में प्रेमचन्द ही ऐसे गल्पकार हैं, जिन्होंने को, उसके मनोभावों को, समाज को, उसकी समस्याओं को

बारीक निगाहों से देखने की कोशिश की और व्यक्ति और समाज के विभिन्न पहलुओं को छूनेवाली सुन्दर छोटी छोटी गल्पों का सृजन किया।

प्रेमचन्द की कला

इससे पहले कि प्रेमचन्द के बाद आधुनिक युग की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कुछ कहा जाय, यह ज़रूरी है कि प्रेमचन्द की कहानी-कला के बारे में कुछ लिखा जाय, क्योंकि मेरे विचार में प्रेमचन्द के यहाँ कहानी के बीज, उस बीज से उगा हुआ पौधा और फिर अनुभूतियों की खुराक पाकर समुचित रूप से बढ़ा हुआ वृक्ष, सब मौजूद हैं। उन्होंने कहानी को जन्म दिया, उसे पाला-पोसा और चोटी तक चढ़ाया। आपको उनके यहाँ आरम्भ की अनगढ़त कहानी, मध्य की विकसित कहानी और आज की पूर्ण कहानी, सभी मिल सकती हैं। प्रेमचन्द और उनकी कला पर अपने एक लेख में आग़ा अब्दुल हमीद ने लिखा था—'कहानी के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण किसी कद्र पुराना है, यों कह लीजिए कि आधुनिक पश्चिमीय कथाकारों से क़द्रे भिन्न हैं, वे कभी-कभी इस बात को भूल जाते हैं कि अनावश्यक विस्तार और असंगत बातें कहानी को कितनी हानि पहुँचाती हैं। 'रानी सारधा' उनकी अच्छी कहानियों में से है; पर वास्तविक अर्थों में यह लघु-कथा नहीं, बल्कि संक्षिप्त उपन्यास है, इसे उपन्यास कहने का कारण इसकी लम्बाई नहीं, बल्कि इसकी बनावट है। कहानी में कोई इधर उधर की बात न होनी चाहिये; क्योंकि इसका दायरा बहुत तंग होता है और असङ्गत बातें इसके तौल को बिगाड़ देती हैं। प्रेमचन्द की बहुत-सी कहानियाँ इस नियम पर पूरी नहीं उतरतीं। वे इधर-उधर की बातों में कहानी का ध्येय भूल जाते हैं। शब्द और समय वे व्यर्थ में नष्ट कर देते हैं। और प्रयास करने पर भी कहानी स्वाभाविकता से समाप्त नहीं होती।'

चूँकि प्रेमचन्दजी के यहाँ ही कहानी ने जन्म पाया, इसलिए यह स्वाभाविक था कि कहानी अपने अपरिक्व रूप में उनके यहाँ मिलती और 'नवावराय' के नाम से उनकी जो कहानियाँ निकलीं वे कहानी के इसी रूप को दर्शाती हैं। उनकी बाद की कहानियाँ जिनमें 'प्रेम बत्तीसी' और 'प्रेम चालीसी' की कहानियाँ शामिल हैं, वे कहानी के मध्य युग अर्थात् उसके लड़कपन का रूप दर्शाती हैं; पर यह कहना कि प्रेमचन्द आधुनिक कहानी की टैकनिक को न जानते थे और उनका दृष्टिकोण पुराना है, यह प्रकट करता है कि आगा साहब ने प्रेमचन्द की इधर की कहानियों को पढ़ने और इनके दृष्टिकोण को जानने का प्रयास नहीं किया। उनकी बहुत-सी कहानियाँ ऐसी हैं जो आधुनिक कहानी की टैकनिक पर पूरी उतरती हैं और उनमें कहानी के सब गुण मौजूद हैं। 'शतरंज के खिलाड़ी', 'गुल्ली-डण्डा', 'कफ़न' ऐसी ही कहानियाँ हैं। आधुनिक कहानी को वे कितना समझते थे और आधुनिक कहानी के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण कितना सुलझा हुआ और साफ़ हो गया था, वह उनके अपने ही एक कथन से प्रकट है। हिन्दी के अपने कहानी संग्रह 'मानसरोवर' के प्राक्कथन में, जो उनकी मृत्यु के कुछ ही पहले छपा, वे लिखते हैं .

'कहानी जीवन के बहुत निकट आ गई है, उसकी ज़मीन अब उतनी लम्बी चौड़ी नहीं है। उसमें कई रसों, कई चित्रों और कई घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा। वह अब केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का, सजीव स्पष्ट चित्रण है। अब उसमें व्याख्या का अंग कम, संवेदना का अंग अधिक रहता है। उसकी शैली भी अब प्रवाहमयी हो गई है। लेखक को जो कुछ कहना है, वह कम से कम शब्दों में कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उनकी ओर इशारा भर कर देता है। हम कहानी का मूल्य उसके घटना विन्यास से नहीं लगाते। हम

चाहते हैं, पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे। खुलासा यह कि आधुनिक गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है।'

आधुनिक गल्प की इससे अच्छी परिभाषा आज का बड़े से बड़ा समालोचक भी नहीं दे सकता। अपने जीवन की सन्ध्या में प्रेमचन्द ने जो कहानियाँ लिखीं, उनसे जाहिर होता है कि उन्होंने मात्र कहानी-कला की विवेचना ही नहीं, बल्कि उस कला पर पूरी उतरनेवाली कहानियाँ भी लिखी हैं। 'कफ़न', 'नशा', 'रसिक सम्पादक', 'मनो-वृत्तियाँ' ऐसी ही कहानियाँ हैं।

अपने जीवन-काल में प्रेमचन्द ने कोई १२ उपन्यास और ३०० कहानियाँ लिखीं। उनकी उम्र ने वफ़ा न की और वे ५६ वर्ष की आयु में ही उर्दू-गद्य की सूखी वाटिका में नव जीवन का संचार करके चले गये। यदि परमात्मा उन्हें कुछ और मोहलत देता तो दुनिया देखती कि उच्च कोटि के गद्य के विचार से उर्दू किसी से पीछे नहीं और उसके ख़ज़ाने में भी ऐसा रत्न है कि वह विश्व साहित्य में गर्व से सिर उठाकर खड़ी हो सकती है।

प्रेमचन्द के बाद

प्रेमचन्द के बाद उर्दू में कोई ऐसा प्रतिभाशाली लेखक नहीं जो उनकी भाँति साहित्य पर छा जाय।

सुदर्शन—कुछ पहले सुदर्शनजी का नाम उनके साथ अवश्य लिया जाता था, पर अब देर से उन्होंने कोई सुन्दर कहानी नहीं लिखी। सुदर्शनजी ने अपना साहित्यिक जीवन एक अनुवादक के रूप में शुरू किया। पहले-पहले जब उर्दू में उपन्यास का उतना प्रचार न था; उन्होंने बंकिमचन्द्र चटर्जी के कई उपन्यासों का उर्दू में अनुवाद किया। इन अनुवादों में, 'क़ुदरत के खेल,' 'ज़हरीला आबेहयात,' 'राजसिंह' आदि प्रसिद्ध हैं। अनुवाद के साथ उन्होंने अनुकरण का

कई गल्पों को कुछ परिवर्तन के साथ अपने नाम पर प्रकाशित कराया। उनकी कहानी 'शोलाए मुज़तिर' बंगाल के प्रसिद्ध लेखक सुरेन्द्रमोहन मुकर्जी की एक कहानी से ली गई है। कथानक सब वही है, केवल कहानी के पहले एक अनावश्यक भूमिका लगा दी गई है। सुदर्शन की कहानियाँ अगरचे कि उस ऊँचाई तक कहीं भी नहीं पहुँचतीं, जहाँ कि प्रेमचन्द आसानी से हर कहानी में पहुँचते हैं; पर उनकी कहानियों में कोई न कोई स्थल ऐसा अवश्य आ जाता है जिसे पढ़ते-पढ़ते गला भर आता है। और भाषा की मिठास तो उनकी प्रसिद्ध है ही। ऐसा मालूम होता है जैसे मिठास की नदी बह रही है! 'चन्दन,' 'क़ौमे कुजा,' 'सुबह वतन' और 'सोलह सिङ्गार' उनकी कहानियों के संग्रह हैं।

अहमद शुजा—दूसरे लेखक जिन्होंने सुदर्शनजी से कुछ पहले लिखना शुरू किया, वे हकीम अहमद शुजा हैं। उन्होंने मुन्शी प्यारे-लाल 'शाकिर' के मासिक पत्र 'अलअस्र' में लिखना आरम्भ किया था। अख़बार हक़ में अनुवादक भी रहे, फिर 'मख़ज़न,' 'कहकशाँ' 'शबाबे उर्दू' में लिखते रहे। उनकी कहानियाँ रोचक और सुन्दर होती हैं; पर टैकनिक पर वे कुछ अधिक पूरी नहीं उतरतीं, अनावश्यक विस्तार का दोष उनमें अधिक होता है। इधर आपने जो नाटक लिखे हैं उसकी भाषा आपकी पहले की रचनाओं से सरल है। उनकी वाक्य-रचना अंग्रेज़ी ढंग पर होती है और मालूम होता है कि अंग्रेज़ी में सोचकर फिर लिखा गया है। अब इधर इन्होंने देर से कहानी लिखना प्रायः छोड़ दिया है। 'हुस्न की क़ीमत' नाम से आपकी चार लम्बी कहानियाँ देर हुए छपी थीं। और उर्दू की आज की कहानी उन्हें बहुत पीछे छोड़ गई है।

अन्य पुराने लेखक

दूसरे पुराने लेखकों में सर्वश्री अहमद शाह बुख़ारी, इम्तियाज़अली

'ताज', आबिद अली, गौरीशंकर लाल 'अख्तर,' सालिक बटालवी, लतीफुद्दीन अहमद और 'चक़दरम' के नाम उल्लेखनीय हैं, पर इनमें से किसी ने भी पचास से अधिक कहानियाँ नहीं लिखीं और इधर ये सब मानो चुप-से हो गये हैं।

श्री बुख़ारी गवर्नमेंट कालेज के प्रोफेसर थे, अब आल इंडिया रेडियो के डिप्टी डाइरेक्टर हैं। सीधी सादी भाषा में हास्य पूर्ण लेख और कहानियाँ उन्होंने लिखीं और जो लिखा वह अब तक पत्रों में नक़ल होता आ रहा है। 'पितरस के मज़ामीन' नाम से उनकी कहानियों तथा लेखों का एक संग्रह छप चुका है।

'ताज' साहब ने अधिक अनुवाद ही किये। उर्दू के प्रख्यात मौलिक नाटक 'अनारकली' के लेखक के नाते वे प्रसिद्ध हैं। कहानियाँ मौलिक उन्होंने दो-एक से ज्यादा नहीं लिखीं; पर भाषा पर उन्हें अधिकार हासिल है और उन्होंने जो अनुवाद भी किये वे भी उच्च कोटि के हैं। 'चचा छक्कन' के नाम से हास्य-रस की कहानियाँ आपकी बहुत लोकप्रिय हुई हैं।

आबिद अली ने कहानियाँ तो बहुत लिखीं पर उनके प्लाट अंग्रेज़ी कहानियों से लिये गये होते थे। ऐसा करने में वे कितने हास्यास्पद बन जाते रहे, इसका एक उदाहरण देखिये। एक अंग्रेजी कहानी में 'एक अनारकिस्ट एक डाक्टर से हैज़ा के क्रिमियों की शीशी उठा ले जाता है, ताकि उसे चश्मे में डाल दे और नगर-निवासियों को तबाह कर दे। डाक्टर को पता लगता है तो वह नंगे सिर उसके पीछे भागता है, उनकी पत्नी उन्हें इस तरह घबराये हुए भागते देखकर डर से उनके पीछे भागती है।' इसी कहानी को श्री आबिद अली ने उर्दू का जामा पहनाया तो पात्र मुसलमान रख दिये और बाकी दृश्य वैसे का वैसा रख दिया। वे यह भूल गये कि चाहे कुछ हो जाय उदार विचारों की मुस्लिम नारी कभी इस तरह नंगे मुँह

नंगे पाँव बाज़ार में भागती नहीं जायँगी।

गौरीशंकर लाल 'अख़्तर' ने बँगला से केवल अनुवाद किया है। बहुत दिन तक उर्दू का मासिक पत्र 'मानसरोवर' निकालते रहे। उसमें ये बँगला और हिन्दी से अनुवाद की गई अपनी कहानियाँ देते रहे।

लालिक बटावली की एक पुस्तक 'चम्पा और दूसरी कहानियाँ' नाम से छपी ; फिर आपने कहानी नहीं लिखी।

लतीफुद्दीन पुरानी तर्ज़ पर कहानियाँ लिखते हैं। 'इन्शाए लतीफ' के नाम से आपका एक संग्रह निकला है। आधुनिक टैकनिक पर आपकी कहानियाँ पूरी नहीं उतरतीं।

'चलदरम' की कहानियों और लेखों का एक संग्रह देर हुई 'खयालिस्तान' के नाम से निकला था। उनका पूरा नाम श्री सज्जाद हैदर है। मुसलिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के वे भूतपूर्व रजिस्ट्रार थे। लतीफुद्दीन और 'चलदरम' की भाषा में हमें कृत्रिम और अत्युक्ति पूर्ण भाषा अधिक मिलती है।

आधुनिक प्रवृत्तियाँ

आधुनिक उर्दू कहानियों का रुझान वास्तविकता की ओर अधिक है। कथानक को कम और मनोविज्ञान को उनमें अधिक स्थान मिल रहा है। इसके अतिरिक्त आज का कहानी-लेखक वीभत्स को वीभत्स दिखाने से भी नहीं हिचकिचाता और प्रगतिशीलता उसकी रचनाओं का एक बड़ा गुण है।

इस लेख के आरम्भ में प्राचीन काल की कहानियों के वास्तविकता से दूर रोमांस-पूर्ण अथवा आध्यात्मिक होने का कारण बताते हुए लिखा गया है कि उस समय देश खुशहाल था, समाज की इतनी समस्यायें न थीं। और रूढ़ियों में फँसा हुआ व्यक्ति अपने आपको, अपने पड़ोस को ... के लिए इतना व्यग्र न था। पेट की भूख का साधन इसके पास ... इसलिए उसकी कहानियाँ या तो विलास भरी होती थीं या अध्यात्म

विषयक। पर आज जीवन उतना सरल तथा सुगम नहीं रहा और आज पेट की भूख इतनी अतृप्त है कि उसने काम (Sexual) और धर्म की भूख को पीछे फेंक दिया है। यही कारण है कि आज कहानी लेखक कल्पना के लोक में बसने के बदले वास्तविक लोक में बसता है।

इस वास्तविकता का आरम्भ स्व० प्रेमचन्द ने ही अपनी कहानियों में कर दिया था, पर प्रेमचन्द धर्म और समाज में विश्वास रखते रहे किन्तु आज साहित्य में धर्म और समाज के विरुद्ध विद्रोह की भावना साफ़ दिखाई देती है और अख्तर हुसैन रायपुरी की कहानियाँ जो उन्होंने 'नफ़रत' के शीर्षक से लिखीं, इस बात का प्रमाण है।

रोमांस के विरुद्ध भी आज घृणा की भावना जागृत हो उठी है। आज का लेखक पूछता है कि क्यों जनता को व्यर्थ ही रोमांस और धर्म के झूठे स्वर्ग में सुलाया जाय और क्यों न वह नग्नसत्य से परिचित हो। श्री सुदर्शन ने इस यथार्थ चित्रण को, उपेक्षा के साथ 'पापमय सत्य का चित्रण' कहा है, पर आज का लेखक इसे 'कटु सत्य का चित्रण' कहता है। सत्य पापमय हो जाता है, जब लेखक का तात्पर्य उससे पाप की प्रेरणा करना हो, पर जब लेखक अपनी सारी शक्ति के साथ उस पाप का उन्मूलन करने के लिए उसका दिग्दर्शन कराता है तो वह पापमय नहीं। रशीदा जहां, अहमद अली और अख्तर हुसैन के यहाँ आपको ऐसी ही कहानियाँ मिलेंगी। इस परिवर्तन के लक्षण तो हमें प्रेमचन्द के यहाँ ही मिलते हैं। 'वारदात' में छपी उनकी कहानी 'नई बीवी' और 'कफ़न' प्रगतिशील साहित्य के उत्तम नमूने हैं।

प्रेमचन्द ने तो इस नग्नसत्य को देखा भी है और जहाँ वह नहीं रह सके उन्होंने उसे दिखाने में भी संकोच नहीं किया, सुदर्शनजी ने तो कभी उस सत्य को देखने का प्रयास नहीं किया। वे तो एक घिनावने दृश्य को देखकर आँखें बन्द कर लेते रहे। ऐसे ही जैसे कबूतर बिल्ली को देखकर आँखें बन्द कर लेता है और समझता है कि अब

श्रीप्रेमचन्द

प्रेमचन्द रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ भारत के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक हैं। आप काशी के रहनेवाले थे। आपने कानपुर के उर्दू-पत्र 'जमाना' में लेख लिखना शुरू किया। आपकी 'प्रेम-पचीसी' और 'सोजेवतन' यह दोनों प्रथम जमाना ही से प्रकाशित हुईं। सन् १९१४ से आप हिन्दी में लिख रहे थे। आपके कई उपन्यास 'सेवा-सदन', 'वरदान', 'कायाकल्प', 'प्रेमाश्रम', 'रंग-भूमि', 'प्रतिज्ञा' तथा 'गबन' आदि प्रसिद्ध हो चुके हैं। आपकी कहानियों के कई संग्रह निकल चुके हैं—'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम-पचीसी' प्रेम-प्रसून', 'प्रेमतीर्थ', सप्तसरोज', 'नव निधि', 'पाँच फूल', 'मानसरोवर', 'कफ़न' आदि। आपकी गल्पों के अनुवाद भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं में हो चुके हैं, जहाँ वे बहुत चाव से पढ़ी जाती हैं। कुछ गल्पों के अनुवाद विदेशी भाषाओं, जैसे जापानी, रूसी, जर्मन, डच तथा अंग्रेजी भाषा में भी हो चुके हैं। उर्दू के आप सबसे बड़े कहानीकार थे।

१९३६ ई० में आपकी मृत्यु से हिन्दी साहित्य की जो क्षति हुई उसका अनुमान नहीं किया जा सकता।

कफ़न

कफ़न

झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनो एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देनेवाली आवाज़ निकलती थी कि दोनो कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गाँव अन्धकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा—मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।

माधव चिढ़कर बोला—मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करूँ?

'तू बड़ा बेदर्द है बे! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफ़ाई!'

'तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।'

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना काम-चोर था कि आध घण्टे काम करता तो घण्टे-भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मज़दूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की क़सम थी। जब दो-चार फ़ाक़े हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाज़ार से बेच लाता। और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। जब फ़ाक़े की नौबत आ जाती, तो फिर लकड़ियाँ तोड़ते या मज़दूरी तलाश करते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को लोग उसी वक़्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिल्कुल ज़रूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाके हुए जिये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त! क़र्ज़ से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई भी ग़म नहीं। दीन इतने की वसूली की बिल्कुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ न कुछ कर्ज़ दे देते थे। मटर, आलू की फ़सल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाशवृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक़्त भी दोनों अलाव के सामने

बैठकर आलू भून रहे थे, जो किसी के खेत से खोद लाये थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आई थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर-भर आटे का इन्तज़ाम कर लेती थी और इन दोनो बे-गैरतों का दोज़ख भरती रहती थी। जब से वह आई, यह दोनो और भी आलसी और आरामतलब हो गये थे। बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्व्याज भाव से दुगुनी मज़दूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव-वेदना से मर रही थी और यह दोनो शायद इसी इन्तज़ार में थे कि वह मर जाय, तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा—जाकर देख तो, क्या दशा है उसकी? चुडैल का फिसाद होगा, और क्या? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया माँगता है।

माधव को भय था, कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ़ कर देगा। बोला—मुझे वहाँ जाते डर लगता है।

'डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।'

'तो तुम्हीं जाकर देखो न?'

'मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं, फिर मुझसे लजायेगी कि नहीं? जिसका कभी मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ। उसे तन की सुध भी तो न होगी? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी।'

'मैं सोचता हूँ, कोई बाल-बच्चा हो गया तो क्या होगा? सोंठ, गुड, तेल, कुछ भी तो नहीं है घर में!'

'सब कुछ आ जायगा। भगवान् दें तो। जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे कल बुलाकर रुपए देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर

में कभी कुछ न था , मगर भगवान ने किसी न किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया ।'

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करनेवालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुक़ाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी । हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था और किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाज़ों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हाँ उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाज़ों के नियम और नीति का पालन करता । इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था । फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जाँ-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती । और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फ़ायदा तो नहीं उठाते !

दोनो आलू निकाल-निकालकर जलते-जलते खाने लगे । कल से कुछ नहीं खाया था । इतना सब्र न था कि उन्हें ठण्डा हो जाने दें । कई बार दोनो की ज़बानें जल गईं । छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा तो बहुत ज्यादा गर्म न मालूम होता ; लेकिन दाँतों के तले पड़ते ही अन्दर का हिस्सा ज़बान और हलक़ और तालू को जला देता था और उस अङ्गारे को मुँह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाय । वहाँ उसे ठण्डा करने के लिए काफ़ी सामान थे । इसलिए दोनो जल्द-जल्द निगल जाते । हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते ।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बारात याद आई, जिसमें बीस साल

पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी, और आज भी उसकी याद ताजा थी! बोला—वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़कीवालों ने सबको भरपेट पूड़ियाँ खिलाई थीं, सबको! छोटे-बड़े सबने पूड़ियाँ खाईं और असली घी की! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला। कोई रोक-टोक नहीं थी। जो चीज़ चाहो माँगो और जितना चाहो खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसनेवाले हैं कि पत्तल में गर्म-गर्म गोल-गोल सुवासित कचौड़ियाँ डाले देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिये, पत्तल पर हाथ से रोके हुए हैं, मगर वह हैं कि दिये जाते हैं। और जब सबने मुँह धो लिया, तो पान-इलायची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी? खड़ा न हुआ जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर!

माधव ने इन पदार्थों का मन ही मन मजा लेते हुए कहा—अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।

'अब कोई क्या खिलायेगा? वह जमाना दूसरा था। अब तो सब को किफायत सूझती है। शादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो; पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे! बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ, खर्च में किफ़ायत सूझती है।'

'तुमने एक बीस पूरियाँ खाई होंगी?'

'बीस से ज़्यादा खाई थीं!'

'मैं पचास खा जाता!'

'पचास से कम मैंने न खाई होंगी। अच्छा पट्ठा था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।'

आलू खाकर दोनो ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर गेडुलियाँ मारे पड़े हों।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

[२]

सवेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठण्डी हो गई थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनो ज़ोर-ज़ोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोसवालों ने यह रोना-धोना सुना, तो दौड़े हुए आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज़्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न की और लकड़ी की फ़िक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में मांस।

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के ज़मींदार के पास गये। वह इन दोनो की सूरत से नफ़रत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों पीट चुके थे। चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा—क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है? अब तो तू कहीं दिखाई भी नहीं देता! मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।

घीसू ने ज़मीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा—सरकार! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुज़र गई। रात-भर तड़पती रही सरकार! हम दोनो उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देनेवाला भी न रहा मालिक!

तबाह हो गये। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगायेगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ!

ज़मींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रङ्ग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से; यों तो बुलाने से भी नहीं आता, जब गरज़ पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का, बदमाश! लेकिन यह क्रोध या दण्ड का अवसर न था। न जी में कुढ़ते हुए दो रुपए निकालकर फेंक दिये। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकला। उसकी तरफ़ ताका तक नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब ज़मींदार साहब ने दो रुपए दिये, तो गाँव के बनिए महाजनों को इनकार का साहस कैसे होता? घीसू ज़मींदार के नाम का ढिंढोरा भी पिटना जानता था। किसी ने दो आने दिये, किसी ने चार आने। एक घण्टे में घीसू के पास पाँच रुपए की अच्छी रकम जमा हो गई। कहीं से नाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस-वाँस काटने लगे।

गाँव की नर्म दिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश को देखती थीं, और उसकी बेबसी पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थीं।

[३]

बाज़ार में पहुँचकर घीसू बोला—लकड़ी, तो उसे जलाने भर को मिल गई है, क्यों माधव!

माधव बोला—हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिये।

'तो चलो, कोई हलका-सा कफ़न ले लें।'

'हाँ, और क्या! लाश उठते-उठते रात हो जायगी। रात को कफ़न कौन देखता है?'

'कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया क़फ़न चाहिये।'

'कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।'

'और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपए पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते !'

दोनो एक दूसरे के मन का भाव ताड़ रहे थे। बाज़ार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बज़ाज़ की दूकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर। तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनो न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे और जैसे किसी पूर्व-निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ ज़रा देर तक दोनो असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—साहुजी, एक बोतल हमें भी देना।

इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आईं और दोनो बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनो सरूर में आ गये। घीसू बोला—कफ़न लगाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ़ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो—दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँमनों को हज़ारों रुपये क्यों दे देते हैं। कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं !'

'बड़े आदमियों के पास धन है, फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है ?'

'लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है ?'

घीसू हँसा—अबे कह देंगे कि रुपए कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आयेगा, लेकिन फिर वही रुपए देंगे।

माधव भी हँसा—इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला—बड़ी अच्छी थी बेचारी! मरी भी तो खूब खिला-पिलाकर!

आधी बोतल से ज्यादा उड़ गई। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मगाईं। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दूकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बच रहे।

दोनो इस वक्त इस शान से बैठे हुए पूड़ियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ़ था, न बदनामी की फ़िक्र। इन भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला—हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है, तो क्या उसे पुन्न न होगा!

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक़ की—ज़रूर से ज़रूर होगा। भगवान्, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनो हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र भर न मिला था।

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला—क्यों दादा, हम लोग भी तो एक न एक दिन वहाँ जायँगे ही।

घीसू ने इस भोलेभाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

'जो वहाँ वह हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफ़न क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे?'

'कहेंगे तुम्हारा सिर!'

'पूछेगी तो ज़रूर!'

'तू कैसे जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा? तू मुझे ऐसा गधा समझता है? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ? उसको कफ़न मिलेगा और इससे बहुत अच्छा मिलेगा।'

माधव को विश्वास न आया। बोला—कौन देगा? रुपए तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में तो सेंदुर मैंने डाला था।

घीसू गर्म होकर बोला—मैं कहता हूँ, उसे कफ़न मिलेगा, तू मानता क्यों नहीं?

'कौन देगा, बताते क्यों नहीं?'

'वही लोग देंगे, जिन्होंने कि अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपए हमारे हाथ न आयेंगे।'

ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज़ होती थी, मधुशाला की रौनक़ भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं! या न जीते हैं न मरते हैं।

और यह दोनों बाप बेटे अब भी मजे ले लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं। पूरी बोतल बीच में है।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक

भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और 'देने' के गौरव, आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा—ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे! जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे ज़रूर पहुँचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं!

माधव ने फिर आसमान की तरफ़ देखकर कहा—वह बैकुण्ठ में जायगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला—हाँ बेटा, बैकुण्ठ में जायगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुण्ठ में जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायँगे जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं!

श्रद्धालुता का यह रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की ख़ासियत है। दुःख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला—मगर दादा, बेचारी ने ज़िन्दगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी।

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा, चीखें मार-मारकर

घीसू ने समझाया—क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई! जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान् थी, जो इतनी जल्द माया मोह के बन्धन तोड़ दिये।

और दोनों खड़े होकर गाने लगे—

'ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी० !'

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने

दिल में मस्त गाये जाते थे। फिर दोनो नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये, अभिनय भी किये। और आखिर नशे से बदमस्त होकर वहीं गिर पड़े!

श्रीसुदर्शन

श्रीसुदर्शन का जन्म मध्यवर्ग के एक ब्राह्मण परिवार में स्यालकोट में सन् १८९६ ई० मे हुआ। आपके पिता का नाम पं०गुरौंदित्रामल था। वे गवर्नमेंट प्रेस मे काम करते थे। सन् १९१३ में पं० सुदर्शन ने कॉलेज छोड़ा और लाहौर के 'हिन्दुस्तान' नामक उर्दू पत्र में काम करना शुरू किया। जीवन मे विभिन्न परिस्थितियों से गुजरे हैं और अनुभव इसलिए गहरा है। कहीं-कहीं, हाँ, आपने चरित्र-चित्रण मे केवल मस्तिष्क से काम लिया है और वहीं आप सफल नहीं हो सके हैं। इधर आप अन्यथा व्यस्त रहने के कारण साहित्यिक कार्य नहीं कर पाते हैं। भाषा के आप माने हुए उस्ताद हैं। भाषा सलीस और मुहावरेदार लिखने मे आपको महारत हासिल है। आज उस भाषा को हम हिन्दुस्तानी कह सकते हैं। हिन्दी और उर्दू दोनो में ही आप लिखते हैं और दोनो ही भाषाओं के कहानी लेखकों में आप अग्रणी हैं। उर्दू मे आपकी बहुत सी किताबें, जैसे 'सुबह वतन', 'चन्दन', 'सोलह सिंगार', 'कौसे कुजा' आदि प्रसिद्ध हो चुकी हैं।

'प्रेम-तरु' आपकी कला का अच्छा प्रतिनिधित्व करती है। यह एक सुन्दर और जोरदार कहानी है। इसका असर दिल पर एक अर्से तक कायम रहता है।

प्रेम-तरु

अपने घर में रोशनी कर ले। ब्याह के बाद दुलहिनें पहले यहाँ आकर नमस्कार करती हैं, इसके बाद अपने ससुराल में पाँव धरती हैं। किसी में हिम्मत नहीं कि गाँव की इस रीति को तोड़ सके। देवी की समाधि गाँव के मध्य में है। उसके ऊपर श्रद्धालुओं ने संगमरमर की एक सुदृढ़ और सुन्दर छत खड़ी कर दी है। इस छत के ऊपर एक झण्डा लहराता है, जो आसपास के गाँवों से भी नज़र आता है। देवी सुलक्खी ने कोई संग्राम नहीं जीता, न कोई राज्य स्थापित किया; न कोई उसमें विशेष आत्म-शक्ति थी, जो लोगों के दिलों को पकड़ लेती; न उसने लोगों के लिए कोई बलिदान किया। वह एक ग़रीब, सीधी-सादी, अनपढ़, परन्तु सतवन्ती ब्राह्मण-महिला थी, जो एक मूर्ख और हठी जाट के क्रोध का शिकार हो गई। उसने अपने पति से जो प्रण किया था, उस पर वह ध्रुव के समान अटल रही। इसमें सन्देह नहीं, वह साधारण ब्राह्मणों से भी ग़रीब थी; परन्तु पातिव्रत-धर्म की दौलत से मालामाल थी। वह मर्यादा की पुजारिन थी। उसने जो कहा था, वह करके दिखा दिया। उसके पति ने एक वृक्ष को अपनी सन्तान कहा था, सुलक्खी ने मरते दम तक पति के इस वचन को निबाहा। यही बात है, जिसने उसे इतने दिनों के बाद आज भी गाँव में जीती-जागती शक्ति बना रखा है। हिन्दू देवी-देवताओं का पूजन करते हैं, मुसलमान पीर-फ़क़ीरों को मानते हैं; परन्तु देवी सुलक्खी का शासन दोनों के हृदयों पर है।

[२]

देवी सुलक्खी इसी गाँव के एक निर्धन ब्राह्मण जयचन्द की स्त्री थी। जयचन्द के घर में स्त्री के अतिरिक्त कोई भी न था—न मा, न बाप, न बहनें, न भाई। बस, पति-पत्नी ये; कोई बाल बच्चा भी न था। कुछ दिन इलाज करते रहे; परन्तु जब सारा परिश्रम निष्फल हुआ, तो भाग्य-विधान पर सन्तुष्ट होकर बैठ रहे। उस युग के ब्राह्मण

जयचन्द—बेरी का पौदा है। अभी छोटा है, चन्द दिनों में बड़ा हो जायगा। इसमें हरे-हरे पत्ते आयेंगे। मीठे मीठे फल लगेंगे। लम्बी-लम्बी डालियाँ फैलाकर खड़ा होगा।

सुलक्खी ने पुलकित होकर कहा—सारे आँगन में छाया हो जायगी।

जयचन्द—हर साल बेर लगेंगे। खूब मीठे होंगे।

सुलक्खी—मैं इसे सदा जल से सींचा करूँगी। थोड़े ही दिनों में बड़ा हो जायगा। कब तक फलेगा?

जयचन्द—(पौदे को प्रेम-भरी दृष्टि से देखकर)—चार वर्ष बाद। तुमने देखा, कैसा प्यारा लगता है! बड़ा होकर और भी प्यारा लगेगा। कैसा चिकना और सुन्दर है! देखकर मन खिल उठता है!

सुलक्खी—(सरलता से) गरमी के दिन हैं, कुम्हला जायगा। मुझे तो अब भी घबराया हुआ मालूम होता है। ज़रा कोंपलें तो देखो, जैसे प्यास के मारे व्याकुल हो रही हों। कहिये, ताज़ा जल भर लाऊँ? गरमी से बड़ों-बड़ों का बुरा हाल है। यह तो बिल्कुल नन्हीं सी जान है! (चुटकी बजाकर) अभी भर लाऊँगी, दो मिनट में।

जयचन्द—इस समय तुम कहाँ जाओगी मैं जाता हूँ।

मगर सुलक्खी ने कलसा उठा लिया, और चली गई। थोड़ी देर बाद दोनो पति-पत्नी उस छोटे-से पौदे को पानी से सींच रहे थे। ऐसे प्यार से, जैसे उनका जीता-जागता बच्चा हो, ऐसी भक्ति से, जैसे उनका देवता हो; ऐसी श्रद्धा से, जैसे कोई अमोल वस्तु हो। पौदा सचमुच धूप से कुम्हलाया हुआ था। ठण्डा पानी पीकर उसने आँखें खोल दीं। सुलक्खी बोली—देख लो! अब इसमें ताज़गी आ गई है या नहीं? क्यों?

जयचन्द—मुझे तो ऐसा मालूम होता है, जैसे यह मुस्करा रहा है।

सुलक्खी—और मुझे ऐसा मालूम होता है, जैसे हमसे बातें कर रहा है। कहता है—मैं तुम्हारा बेटा हूँ।

जयचन्द—भई! यह बात तो तुमने मेरे मुँह से छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। हाँ, बेटा तो है ही। इसे खूब प्यार करोगी न?

सुलक्खी—तुम्हारे कहने की क्या आवश्यकता है? अपने बेटे को कौन प्यार नहीं करता!

जयचन्द—मैं डरता हूँ, कहीं मुझे न भूल जाओ। बड़ी आयु में बालक पाकर स्त्रियाँ पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती हैं; मगर मुझसे तुम्हारी लापरवाही सहन न होगी। यह अभी से कहे देता हूँ।

सुलक्खी—चलो हटो! तुम्हें तो अभी से डाह होने लगा।

जयचन्द हँसते हँसते घर के भीतर चले गये; परन्तु सुलक्खी कई घण्टे धूप में खड़ी बेरी की ओर देखती रही और खुश होती रही। आज भगवान ने उसके घर में रौनक भेज दी थी। आज उसको ऐसा अनुभव हुआ, जैसे वह बाँझ नहीं रही—पुत्रवती हो गई है। अबोध बालक छाछ को दूध समझकर खुश हो रहा था।

[३]

अब जयचन्द और सुलक्खी दोनों को एक काम मिल गया। कभी बेरी को पानी देते कि कुम्हला न जाय; कभी खुरपी लेकर उसके आसपास की ज़मीन खोदते कि उसे अपनी खुराक प्राप्त करने में दिक्कत न हो; कभी उसके इर्द-गिर्द बाड़ लगाते कि कोई जन्तु हानि न पहुँचाये; कभी दो चारपाइयाँ खड़ी करके उस पर चादर फैला देते कि गरमी में सूख न जाय। लोग यह देखते थे, और उनकी इस मूर्खता (!) पर हँसते थे। कोई-कोई कह भी देता था कि इनकी अक्ल मारी गई है, साधारण पौदे को पुत्र समझ बैठे हैं।

मगर प्रेम के इन सरल हृदय-भक्तों को इसकी ज़रा भी परवा न

जयचन्द—बेरी का पौदा है। अभी छोटा है, चन्द दिनों में बड़ा हो जायगा। इसमें हरे-हरे पत्ते आयेंगे। मीठे मीठे फल लगेंगे। लम्बी-लम्बी डालियाँ फैलाकर खड़ा होगा।

सुलक्खी ने पुलकित होकर कहा—सारे आँगन में छाया हो जायगी।

जयचन्द—हर साल बेर लगेंगे। खूब मीठे होंगे।

सुलक्खी—मैं इसे सदा जल से सींचा करूँगी। थोड़े ही दिनों में बड़ा हो जायगा। कब तक फलेगा?

जयचन्द—(पौदे को प्रेम-भरी दृष्टि से देखकर)—चार वर्ष बाद। तुमने देखा, कैसा प्यारा लगता है! बड़ा होकर और भी प्यारा लगेगा। कैसा चिकना और सुन्दर है! देखकर मन खिल उठता है!

सुलक्खी—(सरलता से) गरमी के दिन हैं, कुम्हला जायगा। मुझे तो अब भी घबराया हुआ मालूम होता है। ज़रा कोंपलें तो देखो, जैसे प्यास के मारे व्याकुल हो रही हों। कहिये, ताज़ा जल भर लाऊँ? गरमी से बड़ों-बड़ों का बुरा हाल है। यह तो बिल्कुल नन्हीं सी जान है! (चुटकी बजाकर) अभी भर लाऊँगी, दो मिनट में।

जयचन्द—इस समय तुम कहाँ जाओगी मैं जाता हूँ।

मगर सुलक्खी ने कलसा उठा लिया, और चली गई। थोड़ी देर बाद दोनो पति-पत्नी उस छोटे-से पौदे को पानी से सींच रहे थे। ऐसे प्यार से, जैसे उनका जीता-जागता बच्चा हो, ऐसी भक्ति से, जैसे उनका देवता हो; ऐसी श्रद्धा से, जैसे कोई अमोल वस्तु हो। पौदा सचमुच धूप से कुम्हलाया हुआ था। ठण्डा पानी पीकर उसने आँखें खोल दीं। सुलक्खी बोली—देख लो! अब इसमें ताज़गी आ गई है या नहीं? क्यों?

जयचन्द—मुझे तो ऐसा मालूम होता है, जैसे यह मुस्करा रहा है।

सुलक्खी—और मुझे ऐसा मालूम होता है, जैसे हमसे बातें कर रहा है। कहता है—मैं तुम्हारा बेटा हूँ।

जयचन्द—भई ! यह बात तो तुमने मेरे मुँह से छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। हाँ, बेटा तो है ही। इसे खूब प्यार करोगी न !

सुलक्खी—तुम्हारे कहने की क्या आवश्यकता है ? अपने बेटे को कौन प्यार नहीं करता !

जयचन्द—मैं डरता हूँ, कहीं मुझे न भूल जाओ। बड़ी आयु में बालक पाकर स्त्रियाँ पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती हैं ; मगर मुझसे तुम्हारी लापरवाही सहन न होगी। यह अभी से कहे देता हूँ।

सुलक्खी—चलो हटो ! तुम्हें तो अभी से डाह होने लगा।

जयचन्द हँसते हँसते घर के भीतर चले गये ; परन्तु सुलक्खो कई घण्टे धूप में खड़ी बेरी की ओर देखती रही और खुश होती रही। आज भगवान ने उसके घर में रौनक भेज दी थी। आज उसको ऐसा अनुभव हुआ, जैसे वह बाँझ नहीं रही—पुत्रवती हो गई है। अबोध बालक छाछ को दूध समझकर खुश हो रहा था।

[३]

अब जयचन्द और सुलक्खो दोनो को एक काम मिल गया। कभी बेरी को पानी देते कि कुम्हला न जाय ; कभी खुरपी लेकर उसके आसपास की जमीन खोदते कि उसे अपनी खुराक प्राप्त करने में दिक्कत न हो ; कभी उसके इर्द-गिर्द बाड़ लगाते कि कोई जन्तु हानि न पहुँचाये ; कभी दो चारपाइयाँ खड़ी करके उस पर चादर फैला देते कि गरमी में सूख न जाय। लोग यह देखते थे, और उनकी इस मूर्खता (?) पर हँसते थे। कोई-कोई कह भी देता था कि इनकी अक्ल मारी गई है, साधारण पौदे को पुत्र समझ बैठे हैं।

मगर प्रेम के इन सरल हृदय-भक्तों को इसकी ज़रा भी परवा न

थी। उन्हें उस बेरी की कोंपलें बढ़ती देखकर वैसी ही प्रसन्नता होती थी जैसी माता-पिता को बच्चे के हाथ-पाँव बढ़ते देखकर होती है। जयचन्द बाहर से आते, तो सबसे पहले बेरी की कुशल-क्षेम पूछते। सुलक्खी रात को कई-कई बार चौंककर उठती, और बेरी को देखने जाती। शायद उसे भय था कि कोई ऐसी अनमोल वस्तु को उखाड़कर न ले जाय। ऐसी चाह, ऐसी सावधानी से किसी गरीब विधवा ने अपने एकमात्र पुत्र का भी लालन-पालन शायद ही किया हो।

धीरे-धीरे यह प्रेम-तरु बढ़ने लगा। अब वह ज़मीन से बहुत ऊपर उठ आया था। उसका तना भी मोटा हो गया था। डालें भी बड़ी-बड़ी हो गई थीं। रात के समय ऐसा सन्देह होता था, जैसे वह बाहें फैलाकर किसी से गले मिलने को अधीर हो रहा है। सुलक्खी उसे अपनी बेटी और जयचन्द उसे अपना बेटा कहते थे। उसे देखकर उनकी आँखें चमकने लगती थीं। उनका हृदय-कमल खिल उठता था। यह वृक्ष साधारण वृक्ष न था; उनके रात-दिन के परिश्रम का परिणाम था। इसके लिए उन्होंने अपनी रातों की नींद कुर्बान की थीं। इस पर उन्होंने अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ खर्च कर दी थीं।

इसी तरह प्यार-मुहब्बत और लाड़-चाव के चार वर्ष गुज़र गये, और बेरी के फलने के दिन निकट आ गये। जयचन्द और सुलक्खी दोनो के मन की दशा अकथनीय थी। जब बौर आया, तो दोनो सारा-सारा दिन आँगन में बैठे उसकी रक्षा किया करते थे, कि कहीं कोई पास न फटक जाय। जयचन्द अब पहले की तरह पूजा-पाठ के पाबन्द न रहे थे। सुलक्खी को अब चरखे का खयाल न था। साधारण वृक्ष के प्रेम ने उन्हें इस तरह बाँध लिया था कि ज़रा हिलते भी न थे। हर समय इसी की बातें करते थे। उस वक्त वह इस संसार से बाहर

चले जाते थे। सुलक्खी कहती—तुम्हारे खयाल में यह पीले रङ्ग का बौर होगा, मगर मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरी बेटी ने सोने के गहने पहने हैं। किस शान से खड़ी है!

जयचन्द कहते—यह मेरे बेटे की पहली कमाई है। इसे बौर कौन कहता है! यह तो मोहरें हैं, बल्कि मुझे तो इसके सामने मोहरें भी तुच्छ मालूम होती हैं। उन्हें मनुष्य बनाता है। इसे स्वय भगवान् ने अपने हाथों से सँवारा है। इसके सामने मुहरें और अशरफ़ियाँ किस गिनती में हैं! थोड़े दिनों में यह बेर बन जायँगे। उसमें जो सुन्दरता, जो यौवन, जो मिठास होगी, वह सोने के उन सिक्कों में कहाँ!

सुलक्खी कहती—जिस दिन पहले बेर उतरेंगे, उस दिन मिठाई बाँटूँगी।

जयचन्द कहते—मैं रतजगा करूँगा। गाँव के सारे लोगों को बुलाऊँगा। सारी रात रौनक रहेगी।

सुलक्खी कहती—खूब खर्च करना पड़ेगा।

जयचन्द कहते—लोग बेटों के ब्याहों में अपना धन लुटाते हैं। मेरे लिए यही बेटे का ब्याह है। सब कुछ खर्च हो जाय, तब भी परवा नहीं; परन्तु एक बार दिल के अरमान निकल जायँ। कोई अभिलाषा शेष न रह जाय।

यह सुनकर सुलक्खी किसी दूसरी दुनिया में पहुँच जाती थी। उसके हृदयरूपी समुद्र में खुशी की तरगें उठने लगती थीं। जैसे चाँदनी रात में समुद्र में ज्वार-भाटा आ जाय।

[४]

आखिर वह दिन भी आ गया, जिसकी पति-पत्नी दोनो प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले दिन बेरी के दो सौ बेर उतरे। यह बेर इतने मोटे, ऐसे गोल-मोल, ऐसे लाल, इतने सुन्दर और चिकने थे कि देखकर जी खुश हो जाता था। दोपहर का समय था। सुलक्खी ने पुराने ज़माने

की हिन्दू स्त्रियों की तरह नये कपड़े पहने। लाल रंग की फुलकारी ओढ़ी। नाक में नथ पहनी, और जाकर जयचन्द के सामने खड़ी हो गई। जैसे उस दिन उसके यहाँ कोई ब्याह-शादी थी। उसको इन वस्त्रों के देखकर जयचन्द मुग्ध-से हो गये। थोड़ी देर तक दोनो के मुँह से कोई बात न निकली। आँखें मूँदकर चुपचाप इस अलौकिक आनन्द से आनन्दित होते रहे। तब जयचन्द ने बेर टोकरी में रखे और सुलक्खी से कहा--जा! जाकर यजमानों के यहाँ गिनकर बीस-बीस दे आ।

सुलक्खी ने साहसपूर्ण नेत्रों से पति को देखा, और प्यार-भरी आवाज में कहा—ईश्वर करे, खूब मीठे हों। लोग बे-अख्तियार वाह-वाह करें। आकर बधाइयाँ दें। कहीं ऐसे बेर सारे गाँव में नहीं हैं।

जयचन्द ने दस बेर अपने लिए रख लिये थे। उनकी ओर ताकते हुए बोले—तू ख्वामख्वाह मरी जाती है। दूसरों के लिए मीठे न होंगे, न सही, पर हमारे लिए इनसे मीठी वस्तु संसार में और कोई नहीं है। यह मैं चखे बिना कह सकता हूँ। जा। देर हुई जाती है। तू बाँटकर आ जाय, तो एक साथ खायँ।

सुलक्खी ने पति की ओर श्रद्धा से देखकर उत्तर दिया--मैं एक-आध घर में दे लूँ, तो तुम खा लेना। मेरी राह देखने की क्या आवश्यकता है?

जयचन्द—वाह आवश्यकता क्यों नहीं? एक साथ खायँगे। अकेले में क्या मज़ा आयेगा। ज़रा जल्दी लौट आना। नहीं लड़ाई होगी।

सुलक्खी ने छोटा सा घूँघट निकाला, और बेरों की टोकरी उठाकर बाँटने चली, जैसे कोई ब्याह-शादी की मिठाई बाँटने जा रही हो। थोड़ी देर में एक यजमान दौड़ता हुआ आया, और बोला—पण्डितजी! बधाई है। बेर खूब मीठे हैं।

जयचन्द का दिल धड़कने लगा। मुँह गुलाब हो गया बोले—अच्छा, आपने खाये हैं?

यजमान—खाये क्या हैं। एक बेर चखा है। मगर वाह भई, वाह! गुड़ से भी मीठा है। आम से भी मीठा है। कोई और बेर है, या नहीं?

जयचन्द की वाछें खिली जाती थीं। उन्होंने दो बेर उठाकर यजमान के हाथ में रख दिये। यजमान खाता जाता था और तारीफ़ करता जाता था। कहता था—पण्डितजी! यह बेर क्या हैं चीनी के खिलौने हैं। मेरी इतनी आयु हो गई, मगर ऐसे बेर मैंने आज तक नहीं खाये। परमात्मा जाने, इनमें कैसा स्वाद है, मालूम होता है, जैसे सुगन्ध भरी है।

जयचन्द—परमात्मा ने हमारी मेहनत सफल कर दी।

यजमान—सारे इलाके में ऐसे बेर मिल जायँ, तो मूछें मुँडवा दूँ। दूर-नज़दीक से लोग आया करेंगे। मालूम होता है, आपने अभी तक नहीं चखे।

जयचन्द—यजमानों को भेंट कर लूँ, फिर खाऊँगा।

यजमान—हैरान रह जाओगे। ऐसे बेर काबुल, कन्धार में भी न होंगे। हमारे घर में दस-बीस बेरों से क्या बनता है? देखते-देखते खतम हो गये। और बेर कब तक उतरेंगे? हम बीस और लेंगे।

जयचन्द—आपका अपना वृक्ष है। दो-चार दिन तक और उतरेंगे, तो भिजवा दूँगा। मुझे दूसरों को खिलाकर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह खाकर नहीं होती। लीजिये दो और ले जाइये। छे बाकी हैं। हम दोनों तीन-तीन खा लेंगे। हमें यही बहुत हैं।

थोड़ी देर बाद एक और यजमान आया। उसने भी इतनी तारीफ की कि जयचन्द की आँखें चमकने लगीं। बोले—यह प्रेम का वृक्ष है, इसमें प्रेम के बेर लगे हैं। इससे मीठे संसार-भर में न होंगे।

'भई ! इतनी मेहनत कौन करता है ? आप दोनो ने एक मिसाल क़ायम कर दी है। दो बेर खाये हैं, दो और मिल जायँ, तो मज़ा आ जाय। फालतू हैं या नहीं ?'

जयचन्द ने मुस्कराकर कहा—छै बचे हैं। दो आप ले जाइये। दो-दो हम खा लेंगे।

यजमान—यह तो अन्याय होगा। रहने दीजिये। फिर सही। और बेर कब तक उतरेंगे ?

जयचन्द—आप ले जाइए। हमें स्वाद देखना है। पेट थोड़ा भरना है। (बेर हाथ पर रखते हुए) रात रतजगा है। आइयेगा ना ? कोई बेटे का ब्याह करता है, कोई पोती-पोते का मुण्डन करता है। मेरी आयु में यही एक दिन आया है। यही खुशी का पहला दिन है, यही अन्तिम दिन होगा। और क्या ?

यजमान—ज़रूर आऊँगा, पण्डितजी ! मगर बेर खूब मीठे हैं, अभी तक मुँह से सुगन्ध आ रही है।

यह कहकर यजमान चला गया। इतने में दो और आ गये। पण्डितजी के पास चार बेर बाकी थे। वह उनकी भेंट हो गये। उनके पास अब एक भी बेर न था। पण्डितजी दिल में डरे कि सुलक्खी से क्या कहूँगा ? कहीं ख़फ़ा न हो जाय। तैश में न आ जाय ; परन्तु सुलक्खी इस प्रकार की स्त्री न थी। सारा वृत्तान्त सुनकर बोली—आपने बहुत अच्छा किया। हमारा क्या है ? फिर खा लेंगे। अपना वृक्ष है, जब चाहा, दो बेर तोड़ लिये। कहीं माँगने थोड़ा जाना है।

जयचन्द—गाँव में धूम मच गई है। कहते हैं—ऐसे बेर दूर-दूर तक नहीं हैं।

सुलक्खी की आँखों में आँसू आ गये। नथ को सम्भालते हुए बोली—सभी कहते हैं—और दो। बेर क्या हैं, सोने के पेड़ हैं।

जयचन्द—कहते हैं, इनमें सुगन्ध भी है।

सुलक्खी—जो खाता है, चटखारे लेता है। कहते हैं—ऐसा मज़ा न आम में है, न रंगतरे में।

जयचन्द—यह सब तुम्हारे परिश्रम का फल है। रोज़ पानी दिया करती थी। तुम्हारे हाथों का पानी अमृत हो गया।

सुलक्खी—और जो तुम कपड़ों से छाया करते फिरते थे, उसका कोई असर ही नहीं? यह सब उसी का फल है।

जयचन्द—तुम देर में लौटीं। नहीं तो एक-एक खा लेते। अब दो-चार दिन के बाद पकेंगे।

[५]

परन्तु जयचन्द के भाग्य में बेर पकाना लिखा था, बेर खाना न लिखा था। रतजगे के बाद उनको सहसा बुखार हो गया। गाँव में जैसा इलाज हो सकता था, हुआ। हकीम ने समझा, थकावट का बुखार है। साधारण औषधियों से उतर जायगा, परन्तु वह थकावट का बुखार न था, मृत्यु का बुखार था। जिसकी दवा दुनिया के बड़े से बड़े हकीम के पास भी नहीं। चौथे दिन प्रातःकाल जयचन्द सुलक्खी से घंटा-भर धीरे-धीरे बातें करते रहे। बातें क्या करते रहे, रोते और रुलाते रहे। दुनियादारी की बातें समझाते रहे। ये बातें उनके जीवन का सार थीं। सुलक्खी ये बातें सुनती थी और रोती जाती थी। इस समय उसका दिल वश में न था। वह चाहती थी, जिस तरह भी हो, पति को बचा ले। यदि उसके वश में होता, तो वह अपनी जान देकर भी उन्हें बचा लेती। इसमें उसे ज़रा भी संकोच न था, परन्तु जो भाग्य में बदा हो, उसे कौन रोक सकता है। थोड़ी देर बाद इधर संसार का सूर्य उदय हो रहा था, उधर जयचन्द के जीवन और सुलक्खी की दुनिया का सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया।

अब सुलक्खी संसार में बिल्कुल अकेली थी। अब उसका ७१।

दूकानदार—यह तेरा भ्रम है। आदमी की सन्तान आदमी होता है, वृक्ष नहीं होता।

सुलक्खी—यह अपना-अपना विचार है। कई आदमी ऐसे भी हैं, जो ठाकुर को पत्थर कहते हैं।

दूकानदार—मुझे तो वृक्ष ही मालूम होता है।

सुलक्खी—तेरी आँखों में वह जोत कहाँ, जो इसकी असली सूरत देख सके ! वृक्षों के बेर ऐसे मीठे कहाँ होते हैं !

लछमन अब तक चुप था, यह सुनकर बोला—ऐसे मीठे बेर तुमने कहीं और भी देखे हैं ! एक-एक बेर एक आने को भी सस्ता है।

दूकानदार—यह ठीक है। किन्तु आखिर है तो बेरी।

सुलक्खी—नहीं भैया ! यह बेरी नहीं है, मेरी स्वामी की यादगार है। जो अपने स्वामी की यादगार को बेच दे, उसे मरकर नरक भी न मिलेगा।

दूकानदार—अब इसका क्या उत्तर दूँ ! ५००) थोड़े नहीं होते। तेरी सारी आयु सुख से कट जायगी।

सुलक्खी—भैया ! जो सुख मुझे इसको पानी देकर होता है, वह सुख रुपए लेकर कभी न होगा।

दूकानदार—तो पानी देने से तुझे कौन रोकता है ? जितना चाहे, पानी दे। अगर तेरा हाथ पकड़ जाऊँ, तो जो चोर की सज़ा, वह मेरी सज़ा।

सुलक्खी—परन्तु जो बात अब है, वह फिर कहाँ ! अब अपना है, फिर पराया हो जायगा। अब बेर सारे गाँव में बाँटती हूँ, फिर तू हाथ भी न लगाने देगा। गाँव के जिन लोगों के पास पैसे नहीं, वह क्या करेंगे ! बेरों को देखेंगे, और ठंडी साँस भरकर रह जायँगे। मुझे कोसेंगे, दिल में गालियाँ देंगे। अब सबको मुफ्त मिलते हैं, फिर किसी को भी न मिलेंगे। गाँव के छोटे-छोटे बच्चे कहेंगे, कैसी लोभिन है,

चार पैसों की खातिर बेरी बेच दो। न भाई! यह कलंक का टीका न खरीदूँगी। मैं गरीब ही भली।

यह कहकर सुलक्खी बेरी के पास चली गई, और उसकी डालियों पर हाथ फेरने लगी।

और यह उस स्त्री का हाल था, जिसने किसी पाठशाला में विद्या नहीं पढ़ी थी; जिसने कर्म-धर्म पर कोई व्याख्यान न सुना था; जिसके पास खाने को कुछ न था; जो अपने यजमानों के दान पर निर्वाह करती थी; परन्तु उसका हृदय कितना विशाल, कितना पवित्र था। उसने पड़ोसियों के कर्तव्य को कितना ठीक समझा था। ऐसी पवित्र हृदया, सुशीला तथा सभ्या देवियाँ संसार में कम जन्म लेती हैं।

[६]

कई वर्ष बीत गये।

ज्येष्ठ का महीना था। सुलक्खी बेरी के सारे बेर बाँट चुकी थी। अब बेरी पर एक बेर भी बाक़ी न था। सुलक्खी बेरी के पास खड़ी उसकी खाली डालियों को देखती थी और खुश होती थी कि इस साल का कर्तव्य भी पूरा हो गया। इतने में एक यजमान हाड़ीराम ने आकर सुलक्खी को नमस्कार किया और बोला—पण्डितानीजी! हमारे बेर कहाँ हैं?

सुलक्खी का मुँह कुम्हला गया। हैरान थी, क्या कहे, क्या न कहे। हाड़ीराम गाँव में सबसे उजड्ड जाट था। ज़रा-ज़रा-सी बात पर जोश में आ जाता था और मरने-मारने को तैयार हो जाता था। उसकी लाल आँखें देखकर सारा गाँव सहम जाता था। वह अपने परिवार सहित दो महीने से कहीं बाहर गया हुआ था। सुलक्खी एक-दो बार उसके मकान पर गई और किवाड़ बन्द पाकर लौट आई। इसके बाद वह उसे भूल-सी गई और बेर समाप्त हो गये। और अब...

हाड़ीराम उसके सामने खड़ा था। सुलक्खी ने उसकी ओर सहमी

दूकानदार—यह तेरा भ्रम है। आदमी की सन्तान आदमी होता है, वृक्ष नहीं होता।

सुलक्खी—यह अपना-अपना विचार है। कई आदमी ऐसे भी हैं, जो ठाकुर को पत्थर कहते हैं।

दूकानदार—मुझे तो वृक्ष ही मालूम होता है।

सुलक्खी—तेरी आँखों में वह जोत कहाँ, जो इसकी असली सूरत देख सके! वृक्षों के बेर ऐसे मीठे कहाँ होते हैं!

लछमन अब तक चुप था, यह सुनकर बोला—ऐसे मीठे बेर तुमने कहीं और भी देखे हैं! एक-एक बेर एक आने को भी सस्ता है।

दूकानदार—यह ठीक है। किन्तु आखिर है तो बेरी।

सुलक्खी—नहीं भैया। यह बेरी नहीं है, मेरी स्वामी की यादगार है। जो अपने स्वामी की यादगार को बेच दे, उसे मरकर नरक भी न मिलेगा।

दूकानदार—अब इसका क्या उत्तर दूँ! ५००) थोड़े नहीं होते। तेरी सारी आयु सुख से कट जायगी।

सुलक्खी—भैया! जो सुख मुझे इसको पानी देकर होता है, वह सुख रुपए लेकर कभी न होगा।

दूकानदार—तो पानी देने से तुझे कौन रोकता है? जितना चाहे, पानी दे। अगर तेरा हाथ पकड़ जाऊँ, तो जो चोर की सज़ा, वह मेरी सज़ा।

सुलक्खी—परन्तु जो बात अब है, वह फिर कहाँ! अब अपना है, फिर पराया हो जायगा। अब बेर सारे गाँव में बाँटती हूँ, फिर तू हाथ भी न लगाने देगा। गाँव के जिन लोगों के पास पैसे नहीं, वह क्या करेंगे! बेरों को देखेंगे, और ठंडी साँस भरकर रह जायँगे। मुझे कोसेंगे, दिल में गालियाँ देंगे। अब सबको मुफ्त मिलते हैं, फिर किसी को भी न मिलेंगे। गाँव के छोटे-छोटे बच्चे कहेंगे, कैसी लोभिन है,

चार पैसों की खातिर बेरी बेच दी। न भाई! यह कलंक का टीका न खरीदूँगी। मैं गरीब ही भली।

यह कहकर सुलक्खी बेरी के पास चली गई, और उसकी डालियों पर हाथ फेरने लगी।

और यह उस स्त्री का हाल था, जिसने किसी पाठशाला में विद्या नहीं पढ़ी थी; जिसने कर्म-धर्म पर कोई व्याख्यान न सुना था; जिसके पास खाने को कुछ न था; जो अपने यजमानों के दान पर निर्वाह करती थी; परन्तु उसका हृदय कितना विशाल, कितना पवित्र था। उसने पड़ोसियों के कर्तव्य को कितना ठीक समझा था। ऐसी पवित्र हृदया, सुशीला तथा सभ्या देवियाँ संसार में कम जन्म लेती हैं।

[६]

कई वर्ष बीत गये।

ज्येष्ठ का महीना था। सुलक्खी बेरी के सारे बेर बाँट चुकी थी। अब बेरी पर एक बेर भी बाक़ी न था। सुलक्खी बेरी के पास खड़ी उसकी खाली डालियों को देखती थी और खुश होती थी कि इस साल का कर्तव्य भी पूरा हो गया। इतने में एक यजमान हाड़ीराम ने आकर सुलक्खी को नमस्कार किया और बोला—पण्डितानीजी! हमारे बेर कहाँ हैं?

सुलक्खी का मुँह कुम्हला गया। हैरान थी, क्या कहे, क्या न कहे। हाड़ीराम गाँव में सबसे उजड्ड जाट था। ज़रा-ज़रा-सी बात पर जोश में आ जाता था और मरने-मारने को तैयार हो जाता था। उसकी लाल आँखें देखकर सारा गाँव सहम जाता था। वह अपने परिवार सहित दो महीने से कहीं बाहर गया हुआ था। सुलक्खी एक-दो बार उसके मकान पर गई और किवाड़ बन्द पाकर लौट आई। इसके बाद वह उसे भूल-सी गई और बेर समाप्त हो गये। और अब...

हाड़ीराम उसके सामने खड़ा था। सुलक्खी ने उसकी ओर सहमी

सहसा सुलक्खी छोटा-सा घूँघट निकाले आई, और आँगन में खड़ी हो गई। उसने बेरी की डालों को ज़मीन पर पड़ा देखा, तो उसके दिल पर छुरियाँ चल गईं। उसको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह वृक्ष की डालियाँ नहीं, उसकी सन्तान के हाथ-पाँव हैं। उसने आगे बढ़कर एक-एक डाली को गले लगाया और रो-रोकर विलाप किया। इस विलाप को सुनकर लोग रोने लगे। सुलक्खी कहती थी—अरी! तूने मुझे बुला क्यों न लिया? बच्ची! पता नहीं! जब तुझ पर ज़ालिम का कुल्हाड़ा चला होगा, तेरा दिल क्या कहता होगा। तड़पता होगा। सोचता होगा, मा काहे को है, डायन है। यह कसाई मेरे हाथ-पाँव काट रहा है, वह बाहर घूम रही है। बच्ची! मुझे क्या मालूम था, तेरे सिर पर मौत खेल रही है। अभी भली-चगी छोड़कर गई थी; अभी-अभी तू बाँहें फैलाकर खड़ी थी। तुझे देखकर जी प्रसन्न होता था! इतनी जल्द तेयागी कर ली। अब लोग तेरे बेरों को तरसेंगे। ऐसे मीठे बेर और कहाँ हैं!

'तेरे बाप ने मरते समय कहा था, जब तक जीती है, इसकी रक्षा करना, और इसके बेर लोगों में बाँटना। आज ये दोनो बातें असम्भव हो गईं। अब मेरा जीना वृथा है। चल दोनो एक साथ चलें। वहाँ तीनो मिलकर रहेंगे।'

यह कहकर उसने बेरी की डालियों की चिता-सी चुनी ऊपर सूखी लकड़ियाँ डालकर उस पर घी डाला, और आग लगा दी। आग की ज्वालाएँ हवा में उठने लगीं। लोग पीछे हट गये, मगर सुलक्खी जलती हुई बेरी के पास चुपचाप खड़ी उसकी ओर देख रही थी।

सहसा वह चिता में कूद पड़ी। लोगों में हलचल मच गई। वे 'हैं-हैं' कहते हुए आगे बढ़े; परन्तु आग की ज्वालाओं ने उनका रास्ता रोक लिया। सुलक्खी आग में बैठी जल रही थी; किन्तु उसके मुख पर ज़रा परेशानी—ज़रा घबराहट न थी; बल्कि आत्मिक प्रकाश था। जैसे

उसके लिए आग आग न थी, ठंडा जल था। इतने में आग में से आवाज़ आई—मैं मरते समय वसीअत करती हूँ कि मेरे कुल के लोग भविष्य में दान न लें।

पुरुषों की आँखों से आँसू जारी थे, स्त्रियाँ फूट-फूटकर रो रही थीं; परन्तु सुलक्खी मृत्यु के गरजते हुए शोलों में चुपचाप बैठी थी। देखते-देखते मा-बेटी दोनो जलकर भस्म हो गये। कल दोनो जीते थे, आज कोई भी न था।

थोड़ी देर के बाद सुलक्खी का भाई लछमन और गाँव के जाट लाठियाँ लिये हाड़ीराम को ढूँढते फिरते थे। वे कहते थे—आज उसको जीता न छोड़ेंगे। पहले मारेंगे, फिर बाँधकर आग में जला देंगे।

परन्तु हाड़ीराम जगलों और वनों में मुँह छिपाता फिरता था। इसके बाद उसको किसी ने नहीं देखा। कब मरा! कहाँ मरा! कैसे मरा!—यह किसी को भी मालूम नहीं।

'पतरस'

श्री ए० एस० बुख़ारी के हास्य-निबन्धों के संग्रह को कहानियों का संग्रह कहते लोग डरते हैं। बात यह है कि ये निबन्ध एक कहानी के सभी लक्षणों को पूरा नहीं करते। लेकिन बहुत-से कहानीकारों की कहानियों ने इन नियमों की पाबन्दी नहीं की है, तो भी उनकी कहानियाँ आदर से कहानी-क्षेत्र में स्थान पा रही हैं। 'पतरस' के निबन्धों मे एक-आध को छोड़कर कोई ऐसा नहीं है, जो कहानी की सीमाओं के अन्दर आ सके। लेकिन एक बार उन्हें कहानी मान लेने पर यदि हम अपने निर्णय पर विचार करते हैं तो हमे बड़ी प्रसन्नता होती है। यदि उर्दू मे ऐसे ही दो-एक कहानीकार और पैदा हो जायँ तो उर्दू-साहित्य ऐसे रत्नों से भर जाय कि विदेशीय भाषाओं को भी उससे ईर्ष्या हो। कहानियों की स्वाभाविकता, घटनाओं का सुन्दर वर्णन, कथावस्तु की रोचकता, भाषा की मार्मिकता, कौन-सी ऐसी चीज है जो उनमे नहीं। बात कहने का आपका ढंग ऐसा है कि उसके विषय मे केवल इतना कहना काफी होगा कि एक नवजात भाषा में शैली की यह उत्कृष्टता और कुछ नहीं तो सम्माननीय अवश्य है। सचमुच 'पतरस' साहब उर्दू भाषा को एक देन हैं।

'कुत्ते' से 'पतरस' साहब की कहानियों के सभी गुणों का परिचय मिल जायगा।

कुत्ते

पशु-विज्ञान के प्रोफ़ेसरों से पूछा, सालोत्तरियों से दरियाफ़्त किया, खुद भी सर खपाते रहे; लेकिन कभी समझ में ही न आया कि आखिर कुत्तों से फ़ायदा क्या है? गाय को लीजिये, दूध देती है; बकरी को लीजिये, दूध देती है; यह कुत्ते क्या करते हैं? कहने लगे कि कुत्ता वफ़ादार जानवर है। अब जनाब, वफ़ादारी अगर इसी का नाम है कि शाम को सात बजे से भूँकना शुरू किया, तो लगातार, बिना दम मारे, सुबह को छे बजे तक भूँकते चले गये, तो हम लण्डूरे ही भले।

कल ही की बात है कि रात को कोई ग्यारह बजे एक कुत्ते की तबीयत जो ज़रा गुदगुदाई, तो उन्होंने बाहर सड़क पर आकर 'तरह का मिसरा (समस्या) दे दिया।' एक आध मिनट के बाद सामने के बँगले से एक कुत्ते ने 'मतला' (पहला शेर) अर्ज़ कर दिया

अब जनाब, एक पुराने उस्ताद को जो गुस्सा आया, तो एक हलवाई की भट्टी से बाहर लपके और भन्नाके पूरी गज़ल कह गये। इस पर उत्तर-पूरब की तरफ से एक समझदार कुत्ते ने ज़ोर से दाद दी। अब तो वह मुशायरा गर्म हुआ कि कुछ न पूछिये। कमबख्त बाज़ बाज़ तो 'दो-ग़ज़ले' 'से-ग़ज़ले' लिख लाये थे। कई एक ने बर-ज़बानी क़सीदे-के-क़सीदे पढ़ डाले। वह हंगामा गर्म हुआ कि ठंडा होने ही न आता था। हमने खिड़की से हज़ारों दफ़ा 'आर्डर, आर्डर' पुकारा; लेकिन ऐसे मौक़ों पर सभापति की भी कोई नहीं सुनता। अब इनसे पूछे कि मियाँ, तुम्हें ऐसा ही ज़रूरी मुशायरा करना था, तो दरिया के किनारे खुली हवा में जाकर अपनी लियाक़त दिखाते। घरों के बीच में आकर, सोतों का सताना कौन-सी शराफ़त है!

फिर हम देशी लोगों के कुत्ते होते भी हैं कुछ अजीब बद-तमीज़। अक्सर तो इनमें ऐसे देश-भक्त होते हैं कि कोट-पतलून देखकर भूँकने लग जाते हैं। खैर, यह बात तो एक हद तक क़ाबिले-तारीफ भी है। इसका ज़िक्र ही जाने दीजिये। इसके अलावा एक और बात है। हमें बहुत बार डालियाँ लेकर साहब लोगों के बँगलों पर जाने का इत्तफ़ाक़ हुआ है। क़सम खुदा की, साहबों के कुत्तों में वह शायस्तगी देखी की वाह-वाह करते लौटे। ज्योंही बँगले के फाटक में दाखिल हुए, त्योंही कुत्ते ने बरामदे ही में खड़े-खड़े एक हलकी-सी 'बख़' कर दी और फिर मुँह बन्द करके खड़ा हो गया। हम आगे बढ़े, तो उसने भी चार क़दम आगे बढ़कर एक नाज़ुक और पाक आवाज़ में फिर 'बख़' कर दी। चौकीदारी की चौकीदारी और संगीत का संगीत! इधर हमारे कुत्ते हैं कि न राग, न सुर—न सिर न पैर। तान-पर तान लगाये जाते हैं, बेताले कहीं के। न मौक़ा देखते हैं, न वक्त पहचानते हैं। गले-बाज़ी किये चले जाते हैं। घमण्ड इस बात का है कि तानसेन इसी मुल्क में तो पैदा हुआ था।

इसमें संदेह नहीं कि कुत्तों से हमारा सम्बन्ध ज़रा खिंचा हुआ-सा ही रहा है ; लेकिन हमसे क़सम ले लीजिये, जो ऐसे मौक़ों पर हमने कभी अहिंसा छोड़कर सत्याग्रह से मुँह मोड़ा हो। शायद आप इसे गलत समझें, लेकिन खुदा गवाह है, कि आज तक कभी किसी कुत्ते पर हाथ उठ ही न सका। अकसर दोस्तों ने सलाह दी कि रात के वक्त लाठी या छड़ी ज़रूर हाथ में रखनी चाहिये, क्योंकि यह बिल्लियों को दूर रखती है ; मगर हम किसी से खामख्वाह अदावत पैदा करना नहीं चाहते। कुत्ते भूँकते ही, हमारी स्वाभाविक शिष्टता हम पर इतना क़ाबू पा जाती है कि अगर आप हमें उस वक्त देखें, तो यक़ीनन, यही समझेंगे कि हम बुज़दिल हैं, या डर गये हैं। शायद आप उस वक्त यह अंदाज़ा लगा लें कि हमारा गला सूखा जाता है। यह अलबत्ता ठीक है। ऐसे मौक़े पर कभी मैं गाने की कोशिश करूँ, तो षड्ज् के सुरों के सिवा और कुछ नहीं निकलता। अगर आपने भी हमारी जैसी तबीयत पाई हो, तो आप देखेंगे कि ऐसे मौक़े पर ईश्वर की सर्वव्यापकता आपके ज़हन से उतर जायगी, और उसकी जगह आप शायद दुआये-क़ुनूत (मार्ग-प्रदर्शन की प्रार्थना) पढ़ने लग जायेंगे।

कभी कभी ऐसा इत्तफ़ाक़ भी हुआ है कि रात के दो बजे छड़ी घुमाते थियेटर से वापिस आ रहे हैं, और नाटक के किसी न-किसी गीत की तर्ज़ को ज़हन में बिठाने की कोशिश कर रहे हैं। चूँकि गीत के शब्द याद नहीं और नये अभ्यास का ज़माना भी है, इसलिए सीटी पर ही संतोष किया है। अगर बेसुरे भी हो गये हैं, तो सुननेवाला यही समझेगा कि यह अंगरेज़ी संगीत है। इतने में एक मोड़ पर जो मुड़े, तो सामने एक बकरी बँधी थी। ज़रा मेरी कल्पना को तो देखिये, मैंने उसे भी कुत्ता समझा। एक तो कुत्ता, दूसरे बकरी के बराबर लम्बा-चौड़ा—यानी बहुत ही बड़ा कुत्ता ! बस, उसे देखते ही हाथ-पाँव फूल गये। छड़ी का हिलना कम होते-होते हवा में

मुहम्मद मुजीब

श्री मुहम्मद मुजीब ऑक्सफोर्ड के ग्रेजुएट और जामिया मिल्लिया इस्लामिया (राष्ट्रीय मुस्लिम महाविद्यालय) देहली मे इतिहास के अध्यापक है। आप उन इने-गिने विद्वानो में है, जो युरोप की खास जबानों—जर्मन, रूसी और फ्रांसीसी के ज्ञाता है। आपने उर्दू में कई अच्छे ड्रामे लिखे है और साहित्यिक पत्रिकाओं मे भी आपकी रचनाएँ छपा करती हैं। आपने उर्दू में 'राजनीति-शास्त्र का इतिहास' और 'रूसी साहित्य का इतिहास' दो ऊँचे दरजे के ग्रन्थ लिखे है। आपकी कहानियों का संग्रह 'किमियागर' के नाम से छपा है। अभी हाल में 'अंजाम' और 'खेती' नामक आपके दो नाटक प्रकाशित हुए हैं। यह खुशी की बात है कि कई युरोपीय भाषाओं के तथा अंग्रेजी के विशेष अच्छे ज्ञान के बावजूद भी आप उर्दू में लिखते है। उर्दू की आपने बडी अमूल्य सेवा की है।

'नया मकान' आपकी एक बडी मनोवैज्ञानिक कहानी है। अयूबखाँ का चरित्र बडा स्वाभाविक उतरा है और एक कुशल कलाकार के द्वारा ही उसके चरित्र के एक कमजोर पहलू का इतना वास्तविक चित्रण हो सकता। श्री मुजीब इस चित्रण मे सफल हुए है और यही उनकी कला की प्रशंसा है। भाषा आपकी बडी चुस्त और परिष्कृत है।

नया मकान

नया मकान

इन्सान को खुदा उसी वक्त याद आता है, जब उस पर कोई आफत नाज़िल होती है। अयूबखाँ ताल्लुकेदार के पीर उसे कई बरस से समझा रहे थे; लेकिन उसने अपनी ज़िन्दगी का ढंग बदलने का इरादा उसी वक्त किया, जब उसकी जवान लड़की और दस बरस का लड़का एक ही हफ्ते के अन्दर इन्तकाल कर गये और उसे अपनी दाढ़ी में सुफेद बाल नज़र आने लगे।

'नई ज़िन्दगी, नया मकान !'—उसने अपने दिल में सोचा—जिस घर में सात पुश्तों से ऐयाशी हो रही हो, वहाँ एक अल्लाहवाला कैसे बसर कर सकता है। यहाँ रहा, तो मैं दिन-भर में अपने नेक इरादे सब भूल जाऊँगा।

पुराने मकान में उसने रात गुज़ारना भी पसन्द न किया। फ़ौरन एक कोठी किराये पर ली और खान्दानी घर अपनी आख़िरी तबादफ़

नजिया को बख्श दिया। नजिया को भी अब अपनी सूरत-शक्ल पर इतना भरोसा नहीं रहा था। वह खुशी से इस पर राज़ी हो गई और मछली को जाल से छोड़ दिया। अयूबखाँ का नया मकान बनने लगा, उसके दिल पर दोज़ख का खौफ़ छाया था; मगर जब नमाज़ पढ़ते-पढ़ते टाँगें थक जातीं, तो जी बहलाने के लिए वह अपने नये मकान को देखने चला जाता। मकान बनते और बढ़ते देखकर उसे मालूम होता, कि जैसे उसकी दुआएँ कुबूल हो रही हैं और उसके कंधों से गुनाहों का बोझ हलका होता जाता है। मकान और उसकी रूहानी ज़िन्दगी में एक रिश्ता-सा पैदा हो गया, जिस पर उसे अक्सर ताज्जुब होता था; लेकिन वह उसे कभी समझ न सका।

मकान का बनवाना उसने अपने मुख्तार मुमिद्द मियाँ के सुपुर्द किया और वह रोज़ जाकर उससे कहता था कि जितनी जल्दी मुमकिन हो, मकान तैयार करा दो।

'मुमिद्द मियाँ! रुपए का बिल्कुल ख़याल न करो, जितने मज़दूर मिलें उस पर लगा दो। ज़रूरत हो, तो क़र्ज़ लेने पर तैयार हूँ। मेरा इरादा अब सीधी-सादी ज़िन्दगी बसर करने का है, जितना भी क़र्ज़ हो, सब अदा हो जायगा। मुमिद्द मियाँ, तुम फुर्ती से काम कराओ, मज़दूर बहुत से लगा दो। मैं नये मकान की तरस में मरा जाता हूँ।'

हर शाम को अयूबखाँ और मुमिद्द मियाँ में यही सवाल व जवाब हुआ करते थे।

'हाँ! तो छतें......'

'हुज़ूर, बस......पंद्रह रोज़ में।'

'और दीवारों की लीप-पोत! मुमिद्द मियाँ, ज़रा जल्दी करवाइये। आप तो हर रोज़ वही पन्द्रह रोज़ का क़िस्सा सुनाते हैं।'

'जी हाँ, हुज़ूर!...अब तो कुछ देर नहीं होगी।'

यह सवाल व जवाब मुख्तार की कोठरी के सामने हुआ करते थे। अयूबखाँ रोज बेसब्री में एक लकड़ी से एक खास ईंट के टुकड़े को तोड़ने की कोशिश करता और फिर इधर-उधर देखकर मोटर की तरफ़ चला जाता।

एक दिन जब अयूबखाँ देख-भाल के लिए आया, मुख्तार ने कहा—हुजूर! अब नवाबगंज की नई कोठी तैयार हो गई। वहाँ के चन्द मिस्त्रियों और मज़दूरों को मैंने रख लिया है। मिस्त्री अच्छे हैं और अब काम भी अच्छा होगा।

'अच्छा!'

दोनो मकान का चक्कर लगाने लगे, कल और आज का फ़र्क मुख्तार बढ़ा बढ़ाके बता रहा था।

'हुजूर! यह नये मिस्त्री हैं।'

मिस्त्री उठे और झुककर सलाम किया।

'हुजूर का मिजाज़ तो अच्छा है...!'—एक मिस्त्री ने पूछा।

अयूबखाँ ने उसका कुछ जवाब नहीं दिया। उसकी नज़र और तवज्जुह दूसरी तरफ थी...मिस्त्रियों के पास एक जवान लड़की खड़ी थी। उसने बजाय आदाब बजा लाने के अयूबखाँ की तरफ गौर से देखा और उसके मुँह पर कुछ मुस्कराहट-सी आ गई। अयूबखाँ का बदन काँप गया, चेहरा लाल हो गया।

'हुजूर! मिस्त्री शिकायत करते हैं, कि यह चूना खराब है, मेरे खयाल में किसी और ठीकेदार से मुआमला करना चाहिये।'

'हाँ!'

अयूबखाँ मुख्तार की बातों के जवाब में सिर्फ हूँ हाँ करता रहा, मकान को भी वह अच्छी तरह न देख सका। जिस तरफ वह देखता उस लड़की की शोख आँखें उसकी नज़र का मुक़ाबिला करतीं और उसके कान में कहीं से आवाज़ आती—

'हुज़ूर का मिजाज़ तो अच्छा है !'

अयूबखाँ सर झुका लेता, अगरचे उसे मालूम था कि वह लड़की और मिस्त्री सब अपने काम में मशगूल हैं। उसका दिल धड़क रहा था, तबीयत पर क़ाबू बिल्कुल नहीं रहा। शराब पीने से उसे इख्तिलाज की शिकायत वैसे भी हो गई थी। इस नये वाक़िये ने जो कैफ़ियत उसके दिल में पैदा की थी, वह एक आँधी थी, जिसमें वह तिनके की तरह इधर-उधर चक्कर खा रहा था।

लेकिन इन ख़यालात और जज़बात की असलियत क्या थी? अयूबखाँ कई मर्तबा आशिक़ हो चुका था। हुस्न और हसीनों के अन्दाज़ को वह खूब समझता और पहचानता था। क्या इसी शैतान ने एक नया रूप लेकर उस पर हमला किया था? नहीं, यह इश्क़ नहीं था। यहाँ न हुस्न था, न तलब। घर पहुँचते-पहुँचते अयूबखाँ को बिल्कुल यक़ीन हो गया था कि वह आशिक नहीं हुआ है, मगर फिर यह घबराहट कैसी? यह लाचारी क्यों?

घर पहुँचते ही अयूबखाँ ने दो रकअत नमाज़ पढ़ी। खुदा की याद में वह कभी इतना न डूबा था, जितना इस नमाज़ में और यह अजीब बात थी कि हरदम उस नौजवान मज़दूरिनी की शोख़ आँखें उसे ताकती रहीं, उसका दिल धड़कता रहा, तबीयत कुछ परेशान रही; लेकिन इबादत में कोई फ़र्क़ न आया, खुदा खफ़ा न हुआ, वज़ीफ़े के बीच-बीच में वह खुशी की आहें भरता जाता था, उसकी आँखों में आँसू आ रहे थे, उस मरीज़ की तरह, जो किसी लम्बी बीमारी से अच्छा होकर अपनी आफ़ियत की खुशी मना रहा हो।

'अजीब बात है...अजीब बात है...'—इसके सिवा अयूबखाँ के मुँह से कुछ न निकला।

सवेरे जब वह सोकर उठा, तो अपने-आपको उसने एक बिल्कुल दूसरा आदमी पाया। वह पाक किताब, जिसे वह रोज़ नमाज़ और

वज़ीफे की जजीरों की एक कड़ी और अपने लिए एक सज़ा समझता था, उसे बहुत पसन्द आया। नौकर जब नाश्ता लाया, तो उससे वह बहुत प्यार से बोला, इस तरह कि नौकर घबरा गया ; क्योंकि वह एक सूखा चेहरा और सुर्ख आँखें देखने का आदी था। दो-चार लोग जो मिलने आये, वह भी खुश हुए और यह राय वापस लेकर गये कि ताल्लुकेदार साहब वाकई अल्लाहवाले हो गये हैं। अयूबखाँ जब मकान देखने गया, तो उसने बजाय मुख्तार के साथ घूमने के मज़दूरों के साथ बातें छेड़ीं, बिल्कुल इस तरह गोया वह खुद मज़दूर है। एक बुड्ढा मिस्त्री, जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा था, उसे उस दिन बहुत पसन्द आया। यहाँ तक कि वह उसके पास बैठ गया और बेतकल्लुफी से बातें करने लगा।

'भई, क्या तुम आज से काम कर रहे हो ?'

'नहीं हुजूर, हम तो बहुत दिनन से हियाँ हन।'—मिस्त्री ने जवाब दिया।

'मैं तो तुम्हें आज ही देख रहा हूँ।'

'हुजूर, गरीब आदमिन का कौन देखत है। वौकी का नजरावत है ?'—मिस्त्री ने मुस्कराकर कहा।

'हाँ भाई, ठीक कहते हो।'—अयूबखाँ बजाय इस ताने पर नाराज़ होने के और खुश हुआ। उसके दिल में ख्वाहिश पैदा हुई कि अपने और मिस्त्री के दरमियान जो फासला है, वह कम हो जाय, जो दीवार है वह गिर जाय। पहले अगर वह इसकी कोशिश करता, तो उसकी समझ काम न देती। आज उसे सब साफ दिखाई दे रहा था।

'हाँ भाई, ठीक कहते हो।'—उसने ठण्डी साँस भरकर कहा—तुम यहाँ कोई एक महीने से काम कर रहे हो और मुझे यह भी नहीं मालूम कि तुम हो भी या नहीं...लेकिन अब धीरे-धीरे मेरी तबीयत बदल रही है। अब मुझे मालूम हुआ कि हमारे रसूल ने क्यों फर्माया

है कि अमीरों के लिए जन्नत में जाना उतना ही मुश्किल है, जितना ऊँट का सुई के नाके से निकलना। मैंने अपनी जवानी बड़ी बुरी तरह गुजारी। अभी कुछ दिन हुए, जब मेरे दो बच्चे एक ही हफ्ते के अन्दर मर गये। तब मुझे खयाल आया कि खुदा भी एक चीज़ है, और जो खुदा को भूल जाता है, उसका नुकसान ही नुकसान है।

'हाँ हुजूर! जब सारी दुनिया खुदाई की है, तो खुदाय को भूले से दुनिया कैसे मिले!'—मिस्त्री ने इतमीनान से कहा।

'हाँ ठीक कहते हो...इसलिए मैंने इरादा कर लिया है कि अपना पुराना मकान, जहाँ मैं अमीरों की तरह रहता था, छोड़ दूँगा, और इस नये मकान में बैठकर अपने खुदा की इबादत करूँगा।'

मिस्त्री कुछ कहना चाहता था, मगर रुक गया। अयूबखाँ ने सिलसिला जारी रखा—मैं अब यहाँ बिलकुल गरीबों की जिन्दगी बसर करूँगा।...गरीबों के साथ रहूँगा...सब का दोस्त सब का भाई...

अयूबखाँ कुछ देर तक खामोश खड़ा सोचता रहा। दिल की बात जबान पर इतनी आसानी से नहीं आती। मिस्त्री ने एक ठंडी साँस ली और काम शुरू कर दिया; लेकिन दोनों को यह मालूम हो गया कि उनमें दोस्ती हो गई है और दोनों इससे बहुत खुश हुए। अयूबखाँ में अब किसी किस्म की झिझक बाकी नहीं रही।

घूमते-घूमते वह उस जगह पर भी पहुँचा जहाँ वह नौजवान [illegible] काम कर रही थी, जिसकी आँखों और मुस्कराहट ने अयूबखाँ [illegible] यह नया जोश पैदा कर दिया था। लड़की ने अयूबखाँ पर [illegible] एक सरसरी नज़र डाली और अपने काम में लगी रही, लेकिन अयूबखाँ को यह नज़र भी बहुत प्यारी मालूम हुई। वह गरीबों की मुहब्बत, हमदर्दी, दिली दोस्ती से भरी थी, उसने एकदम से ज़ाहिर कर दिया, जो अमीरों की दोस्ती में नहीं बनाया जा सकता। और फिर जबान से वह दुख-दर्द कहाँ, जो निगाहों से हुआ करता है।

कम-से-कम अयूबखाँ इसे यों ही समझा, उसने यह नहीं सोचा कि मज़दूरनी उसकी राज़दार क्यों बनने लगी, ऐसी बात आज उसके दिमाग में समा ही नहीं सकती थी। आज वह सबका भाई, सबका दोस्त था। उसे एक तरह से आशा थी कि हर मर्द और औरत उससे अपनी मुहब्बत का इज़हार करेगी, और इसमें उसे निराशा नहीं हुई।

मिस्त्री उससे बेतक़ल्लुफी से बातें करने लगे और हर रोज़ उनसे बातें करने में अयूबखाँ को नया आनन्द आता था; हर रोज वह नये जज़बात दिल में समेट कर घर वापस जाता, जैसे लोग कोई कीमती चीज़ बगल में दबाकर ले जाते हैं और इस दौलत को अपने खुदा के सामने पेश करता। इबादत उसके लिए एक मुलाकात-सी हो गई, जिसको वह दिलचस्पी और पुरलुत्फ बनाने के लिए हर दिन नई खबरें लाता, नई हँसी हँसता और नये आँसू रोता। मिस्त्रियों से बात चीत करते हुए उसे हमेशा कोई-न-कोई ऐसी बात सुनाई देती, जो उसे सचाई और मुहब्बत से भरी हुई मालूम होती। इस जवान मज़दूरनी की आँखों में जज़बात का एक ऐसा खज़ाना था कि अयूबखाँ के दिल में हर रोज़ एक नया हंगामा पैदा होता और उसे सुकून उसी वक्त होता, जब वह इबादत में अपने खुदा को सारा हाल सुना देता।

एक रोज़ जब मकान तैयार हो चुका था और मिस्त्री अंदर दीवारों पर चूना लगा रहे थे, तो बुड्ढे मिस्त्री ने, जो अयूबखाँ से बिल्कुल आज़ादी से गुफ्तगू करता था, मुस्कराकर कहा—कहो साहब, अब बियाह कब होइहै!

'क्यूँ?'

'हम कहा कि पाँच कमरे हैं, उनमाँ कौन रहिहै, आप तो दिन-रात नमाज पढ़त हैं।'

अयूबखाँ मुस्कराया और कुछ जवाब न दिया, उसकी बीवी का

देहांत कोई पाँच साल पहले हो चुका था; लेकिन उस ज़माने में वह ऐयाशी में ऐसा फँसा हुआ था कि उसे दूसरी शादी का ख़याल कभी नहीं आया, और न कोई ऐसा बाप मिला, जो उसे बेटी देने पर राज़ी था। मिस्त्री के सवाल को इस वक्त तो वह टाल गया; मगर दिल में यह बात ठहर गई। कमरों का आख़िरी मर्तबा गश्त लगाते हुए उसने सोचा—कहता तो दरअसल ठीक है, मकान ख़ाली-ख़ाली-सा रहेगा और फिर दूसरी शादी में गुनाह क्या है! ऐयाशी तो मैंने छोड़ ही दी है...पहली बीवी को मैंने जो तकलीफ़ दी है, उसके बदले एक दूसरी औरत को अगर खुश कर सकूँ, तो...

उसे एकबारगी उस जवान मज़दूरनी का ख़याल आ गया। अयूब-ख़ाँ से अब वह इस क़दर हिल गई थी कि दोनों में ख़ूब बातें हुआ करती थीं, लेकिन उसकी पहली निगाह का जो असर पड़ा था, उसे वह कभी नहीं भूला, और दिल में उस मामूली मज़दूरनी की बहुत इज़्ज़त करता रहा। आज शादी की फ़िक्र ने उसके ताल्लुक़ात का रंग बदल दिया, उसने अपने-आपको बहुत यक़ीन दिलाने की कोशिश की कि ऐसा नहीं है; लेकिन उसके पैर उसे बेअख़्तियार उसी कमरे की तरफ़ ले चले, जहाँ वह मज़दूरनी काम कर रही थी। नये इरादों के साथ, ताज़ा दीदार का शौक़ पैदा हुआ और अयूबख़ाँ की आँखें यह देखना चाहती थीं कि मज़दूरनी अगर उनकी बीवी हुई तो कैसी मालूम होगी! कमरे में पहुँचकर उसने मिस्त्रियों से बातें शुरू कर दीं, कुछ अपनी घबराहट दूर करने के लिए, कुछ इस डर से कि कहीं किसी को ख़याल न हो जाय कि वह मज़दूरनी को आया है; लेकिन इन तरकीबों ने ज़्यादा देर तक काम नहीं दिया और चन्द जुमलों के बाद वह ख़ामोश हो गया। उसकी आँखों के सामने एक नये मकान और नई ज़िन्दगी की तसवीर थी। कभी वह देखता कि गाद इमारत में मदहूश है और उसकी बीवी थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसके कमरे में एक

नज़र डाल जाती है और अयूबखाँ मजदूरनी की तरफ देखकर सोचता कि यह नज़र कैसी होगी! कभी उसे दोनो खाने पर बैठे दिखाई देते, वह मुख्तलिफ चीजें उसके सामने पेश करती होती और अयूबखाँ उस मज़दूरनी की तरफ देखता कि यह तवाज़ो कैसी होगी! कभी तखय्युल यह मन्ज़र पेश करता कि दोनो शाम के वक्त सूरज को डूबते हुए देख रहे हैं, उसका हाथ उसके कन्धे पर है और दोनो खामोश हैं। फिर अयूबखाँ मज़दूरनी की तरफ देखता, कि यह खामोशी कैसी होगी! मज़दूरनी की सादगी, उसका भोलापन, उसकी मुहब्बत-भरी निगाहें! घर के सजाने और ज़िन्दगी के खुश करने के लिए इससे ज़्यादा किस चीज की ज़रूरत थी! फिर देश से वह रूहानी लगाव, ग़रीबों से वह दोस्ती, जिसका उसने कुछ दिन पहले ही इकरार किया था, उन सबके क़ायम रखने की और कौन-सी तर्कीब हो सकती थी? अयूबखाँ का जी चाहने लगा कि किसी तरह से वह कूद-फाँदकर अपनी मौजूदा हालत से उस ज़िन्दगी तक पहुँच जाय, जिसकी एक झलक अभी उसे नज़र आई थी, अपनी उम्मीदें पूरी करे और दिल की बेचैनी दूर करे; लेकिन जब वह घर पहुँचा और खाने के बाद आराम करके नमाज़ पढना चाहा, तो उसे एक अजीब सुस्ती-सी महसूस हुई। जहाँ वह शौक़ से जाता था, वहाँ आज मालूम होता था कि कोई ज़बरदस्ती लिये जा रहा है। नमाज़ तो उसने किसी न-किसी तरह से खत्म कर ली, मगर उसे इस तब्दीली पर हैरत हुई।

'आखिर मुझे हो क्या गया! क्या अब भी अपने खुदा से मुँह फेर लूँगा?'—उसने अपने-आपसे घबराकर पूछा, मगर उसका कहीं से जवाब न मिला और आखिरकार आजिज़ आकर वह वज़ीफे को छोड़-छाड़ अपने पलंग पर लेट गया। वाक़िया यह था कि वह अपनी शादी की सोच में था, और उसी जवान मजदूरनी की आँखें, जिन्होंने उसकी इबादत ऐसी रसीली कर दी थी, आज उसे अपनी तरफ बुला

रही थीं। अयूबखाँ ने ऐयाशी से तोबा की थी, उस तरह की मुहब्बत से नहीं की थी, जो मर्द और औरत को मियाँ बनाती है और उनको खुश रखती है, लेकिन फिर खुदा और उसके एक दीनदार बन्दे के दरमियान में यह पर्दा कैसा पड़ गया, यह बेगानी क्योंकर हो गई! अयूबखाँ उस वक्त अपनी आइन्दा जिन्दगी की तसवीर बनाने में ऐसा मशगूल था कि उसने इस सवाल पर ज्यादा गौर करने से बचना चाहा, मगर यह अन्देशा उसके दिल में काँटे की तरह चुभने लगा कि शायद वह जिन्दगी, जिसका वह अब इरादा कर रहा था, खुदा को पसन्द नहीं। जब सिर्फ उसके खयाल ने इबादत से जी हटा दिया, तो न जाने असलियत कहाँ पहुँचायेगी।

नतीजा यह हुआ कि अयूबखाँ की तबीयत में झुँझलाहट-सी पैदा हो गई। उसकी खयाली तसवीरें सब धुवाँ बनकर उड़ गईं और उसके दिमाग में इस मसले पर बहस छिड़ गई कि उसे मजदूरनी से शादी करनी चाहिये या नहीं! उसकी अपनी राय तो शादी के मुआफ़िक़ थी, लेकिन फिर उसने सोचा कि और लोग क्या कहेंगे? रिश्तेदारों और अज़ीज़ों की ज़बान से खुदा बचाये, वह तो बेगुनाहों को भी रोज सूली पर चढ़ाते हैं। ऐसी हरकत पर तो वह उसकी धज्जियाँ उड़ा देंगे, नाम मिट्टी में मिला देंगे। रिश्तेदार तो ख़ैर, खुदा ने इसीलिए पैदा किये हैं; उनको छोड़िये। मज़दूरनी से निकाह होने की खबर सुनकर कौन रहेगा! गली गली लोग हँसी उड़ायेंगे, और यह नौकर-चाकर, [illegible] लोग, जो इस वक्त खीदमतगार और तावेदार मालूम होते हैं, यह [illegible] खूब दाँत दिखायेंगे। मजदूरनी दुनिया में सबसे बदसूरत औरत बन जायगी, और वह खुद सबसे ज्यादा बेवकूफ आदमी। और क्या, [illegible] हवहा लिये लोगों की राय बदलता फिरेगा! अयूबखाँ के खयालात का देर तक यही रंग रहा, और जब नौकर ने चाय लाने में देर की, तो उसे बिल्कुल यकीन हो गया कि शादी का नतीजा बुरा होगा।

सारी शाम और आधी रात तक अयूबखाँ की तबीयत परेशान रही। कभी उम्मीद नई ज़िन्दगी को उसके सामने दिलरुबा शक्लों में पेश करती, कभी लोग उसकी हिमाक़त पर हँसते हुए नज़र आते। यह भी मुमकिन न था कि वह इबादत में सलग्न होकर इन सब झगड़ों को भूल जाय, क्योंकि इस पर उसका जी किसी तरह से राज़ी नहीं होता था। आख़िरकार नींद ने आकर बहस मुल्तवी कर दी।

दूसरे दिन सवेरे जब नये मकान को देखने के लिए जाने का वक्त आया, तो अयूबखाँ का अजीब हाल था।

'पहले तो नई ज़िन्दगी के तरीके को तय कर लेना चाहिये।'— उसने सोचा—यह मकान वगैरह तो सब मज़ाक है, वहाँ कोई जाकर क्या करे।–मगर नई ज़िन्दगी का मसला तैयार नहीं हो सकता था; इसलिए वह दिल बहलाने के लिए चला गया।

मकान के अन्दर मिस्त्रियों में बडे ज़ोर-शोर से बहस हो रही थी। अयूबखाँ को देखते ही बुड्ढे मिस्त्री ने उनकी तरफ मुखातिब होकर कहा—और सुनियो मियाँ साहेब! वह सन्दुरिया भाग गई। डेढ दिन की मजूरी छोड़कर चली गई...

'कौन, सन्दुरिया कौन?'

अयूबखाँ को इस जवान मज़दूरनी का नाम तो मालूम था; लेकिन वह यह खबर सुनकर ऐसा घबराया कि उसकी समझ में और कोई सवाल न आया।

'अरे वही साहेब, जीकी अस बगुला जैसी अँखियाँ रहिन। आप तौ वीका जानत हैं।'

'क्यों! कैसे भाग गई?

'हम का जानन साहेब, ई मगल तौ कहत हैं कि ऊ आशिक होय गई रहे, इनहिन से पूछौ।'

मिस्त्री मगल ने इतमीनान से कहा—साहेब, जब से वह हियाँ आई

रही थीं। अयूबखाँ ने ऐयाशी से तोबा की थी, उस तरह की मुहब्बत से नहीं की थी, जो मर्द और औरत को मियाँ बनाती है और उनको खुश रखती है, लेकिन फिर खुदा और उसके एक दीनदार बन्दे के दरमियान में यह पर्दा कैसा पड़ गया, यह बेगानी क्योंकर हो गई? अयूबखाँ उस वक्त अपनी आइन्दा जिन्दगी की तसवीर बनाने में ऐसा मशगूल था कि उसने इस सवाल पर ज्यादा गौर करने से बचना चाहा, मगर यह अन्देशा उसके दिल में काँटे की तरह चुभने लगा कि शायद वह जिन्दगी, जिसका वह अब इरादा कर रहा था, खुदा को पसन्द नहीं। जब सिर्फ उसके खयाल ने इबादत से जी हटा दिया, तो न जाने असलियत कहाँ पहुँचायेगी।

नतीजा यह हुआ कि अयूबखाँ की तबीयत में झुँझलाहट-सी पैदा हो गई। उसकी खयाली तसवीरें सब धुवाँ बनकर उड़ गईं और उसके दिमाग में इस मसले पर बहस छिड़ गई कि उसे मजदूरनी से शादी करनी चाहिये या नहीं? उसकी अपनी राय तो शादी के मुआफ़िक़ थी, लेकिन फिर उसने सोचा कि और लोग क्या कहेंगे? रिश्तेदारों और अज़ीज़ों की ज़बान से खुदा बचाये, वह तो बेगुनाहों को भी रोज सूली पर चढ़ाते हैं। ऐसी हरकत पर तो वह उसकी धज्जियाँ उड़ा देंगे, नाम मिट्टी में मिला देंगे। रिश्तेदार तो खैर, खुदा ने इसीलिए पैदा किये हैं; उनको छोड़िये। मज़दूरनी से निकाह होने की खबर सुनकर कौन चुप रहेगा? गली-गली लोग हँसी उड़ायेंगे, और यह नौकर-चाकर, यही लोग, जो इस वक्त खिदमतगार और तावेदार मालूम होते हैं, यह भी खूब दाँत दिखायेंगे। मजदूरनी दुनिया में सबसे बदसूरत औरत बन जायगी, और वह खुद सबसे ज्यादा बेवकूफ आदमी। और क्या, कोई झगड़ा लिये लोगों की राय बदलता फिरेगा? अयूबखाँ के खयालात का देर तक यही रंग रहा, और जब नौकर ने चाय लाने में देर की, तो उसे बिल्कुल यक़ीन हो गया कि शादी का नतीजा बुरा होगा।

सारी शाम और आधी रात तक अयूबखाँ की तबीयत परेशान रही। कभी उम्मीद नई ज़िन्दगी को उसके सामने दिलरुबा शक्लों में पेश करती, कभी लोग उसकी हिमाक़त पर हँसते हुए नज़र आते। यह भी मुमकिन न था कि वह इबादत में संलग्न होकर इन सब झगड़ों को भूल जाय; क्योंकि इस पर उसका जी किसी तरह से राज़ी नहीं होता था। आख़िरकार नींद ने आकर बहस मुल्तवी कर दी।

दूसरे दिन सवेरे जब नये मकान को देखने के लिए जाने का वक्त आया, तो अयूबखां का अजीब हाल था।

'पहले तो नई ज़िन्दगी के तरीक़े को तय कर लेना चाहिये।'— उसने सोचा—यह मकान वग़ैरह तो सब मज़ाक है, वहाँ कोई जाकर क्या करे।—मगर नई ज़िन्दगी का मसला तैयार नहीं हो सकता था; इसलिए वह दिल बहलाने के लिए चला गया।

मकान के अन्दर मिस्त्रियों में बडे ज़ोर-शोर से बहस हो रही थी। अयूबखाँ को देखते ही बुड्ढे मिस्त्री ने उनकी तरफ मुखातिब होकर कहा—और सुनियो मियाँ साहेब। वह सन्दुरिया भाग गई। डेढ दिन की मजूरी छोड़कर चली गई...

'कौन, सन्दुरिया कौन?'

अयूबखाँ को इस जवान मज़दूरनी का नाम तो मालूम था; लेकिन वह यह खबर सुनकर ऐसा घबराया कि उसकी समझ में और कोई सवाल न आया।

'अरे वही साहेब, जीकी अस बगुला जैसी अँखियाँ रहिन। आप तौ वीका जानत हैं।'

'क्यों! कैसे भाग गई?

'हम का जानन साहेब, ई मगल तौ कहत हैं कि ऊ आशिक होय गई रहे, इनहिन से पूछौ।'

मिस्त्री मगल ने इतमीनान से कहा—साहेब, जब से वह हियाँ आई

मिश्र की शाहज़ादी

हम चारो विभिन्न विषयों पर बहस करके थक चुके थे और अब गाड़ी के कमरे में वह निस्तब्धता छाई हुई थी, जो एक लम्बे वाद-विवाद का परिशिष्ट होती है।

नसीम खिड़की के पास बैठा अपने नाखून पालिश कर रहा था। नाखून पालिश करने का उसे खब्त है। हमारे दुर्भाग्य से डाक्टर है, इसलिए हमें भी यही सलाह दिया करता है। 'हैज़ा क्यों होता है'—वह कहता है—नाखून न पालिश करने से; बुखार क्यों होता है? नाखून न पालिश करने से। यहाँ तक कि हममें से कोई घातक निश्चय के साथ उठता है और इस बकवाद के लिए नसीम की मरम्मत करना चाहता है। इसके बाद कुछ समय के लिए नाखूनों के इस विषय से छुटकारा मिल जाता है।

दरम्यान की सीट पर हाफिज़ साहब बैठे थे, अभी कई सेर हलवा

और पूरियाँ उनके सामने रखी थीं। बहस के दौरान में खाते भी जाते थे और ताज़ा दम होकर बोलते भी जाते थे।

मेरे साथ की सीट पर नाज़िम साहब बैठे थे, एक स्थानीय कालेज में वनस्पति के अध्यापक थे और बहस करते-करते जब कोई ज़रा गरम हो जाता था तो यह कोई ऐसा व्यङ्ग छोड़ते थे कि बहस फिर अपनी साधारण रविश पर आ जाती थी।

इस संक्षिप्त भूमिका का तात्पर्य्य यह है कि हममें से कोई भी ऐसा न था जो किसी के कहानी सुनाने के ढंग ही को देखकर उसकी कहानी पर विश्वास करने को शीघ्र ही तैयार हो जाता। खैर इसका निर्णय आप स्वयं कर लें।

× × ×

भोपाल से तीन-चार स्टेशन गाड़ी इधर ठहरी तो कमरे में केवल हम चारों थे। उस सुन्दर और बड़ी सफ़ाई से कपड़े पहने हुए युवक को पहले नसीम ने देखा और मुड़कर बोला—देखना यार, कितना खूबसूरत नौजवान है, इसी ओर आ रहा है।

मैंने खिड़की से झाँककर देखा, सचमुच एक सुन्दर युवक खूबसूरत ऐनक लगाये हमारे डिब्बे की ओर बढ़ा आ रहा था। गोरा रंग, कुछ छोटा कद, मस्तक पर ऐसी लकीरें जो बताती थीं कि वह हँस-मुख है और नक्श इतने तीखे कि सन्देह हो मानो किसी लड़की ने भेस बदला है।

हमारे कमरे के पास आकर वह युवक ठिठक गया और प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगा। मैंने कहा—आइये, काफ़ी जगह है।

'धन्यवाद !'

और युवक कमरे के अन्दर आ गया।

हामिद साहब उठे, घूरकर नवयुवक की ओर देखा और फिर कहा—नहीं आइयेगा।

'भोपाल !'

नाज़िम साहब ने अपने साथ जगह खाली करते हुए कहा—आइये, बैठिये।

'धन्यवाद !'

और इस संक्षिप्त-सी बातचीत के बाद फिर नीरवता छा गई। पश्चिम की जहाँ और बातें हमने अपनाई हैं, वहाँ एक यह भी है कि सैकेंड-क्लास के डिब्बों में यात्री बाक़ायदा परिचय के बिना एक दूसरे से बात नहीं कर सकते। तीसरे और दरम्याने दर्जे में यह प्रतिबन्ध नहीं। वहाँ प्रत्येक यात्री को यह अधिकार प्राप्त है कि वह दूसरे की बात में दखल दे, जब जी चाहे बात करे, जब जी चाहे खाये, जहाँ जी चाहे थूके, जहाँ जी चाहे सिगरेट पीकर फेंक दे।

कोई आध घण्टे के बाद मैंने नसीम से कान में कहा—यार, यह आदमी अच्छे मज़ाक़ का मालूम होता है, कोई बात शुरू करो !

नसीम ने इशारों ही इशारों में जवाब दिया और कुछ मिनट बाद कहने लगा—अलफ़ लैला का एक नया संस्करण पैरिस से निकला है। हाफ़िज़ साहब, आपके काम की चीज है, बाज़ारी एडीशनों की भाँति रद्दी नहीं, असली चीज़ है।

'लाहौल विला कुव्वत !'—हाफ़िज साहब ने कहा।

नाजिम साहब ने पूछा—यार, अब तक लोग इस फजूल चीज को पढते हैं !

मैंने साहित्यिक ढंग से कहा—वाह नाज़िम साहब, आपको मालूम होना चाहिये कि अरब लोग आख्यायिकाओं के जन्मदाता ..

'हाँ, हाँ' नसीम ने बात काटकर कहा—पर छोड़ो तुम इस लेक्चर को, इस वक्त हम तुमसे साहित्य, या कथा-कहानी पर कोई भाषण सुनने के लिए तैयार नहीं। बात तो केवल यह थी कि...

नवागन्तुक युवक ने अत्यन्त मीठे स्वर में बात काटकर कहा—

क्षमा कीजियेगा, मैं आपकी बात काट रहा हूँ; पर आपने किस तरह अलफ लैला को निरर्थक कह दिया! शायद यही कारण है न कि इसमें ऐसी घटनाएँ दर्ज हैं जो साधारणतया घटित नहीं होतीं; पर मेरे खयाल में इस तरह के कहानी-साहित्य का उद्देश्य तो यह है कि ऐसी घटनाएँ बयान करे जो पेश आ तो नहीं सकतीं; पर पेश आनी चाहियें; बिलकुल उसी तरह, जैसे भयानक कहानियाँ लिखनेवालों का उद्देश्य यह है कि ऐसी घटनाएँ बयान करें जो पेश तो आती हैं; पर पेश नहीं आनी चाहियें।

भूमिका अच्छी थी। मैंने नसीम की ओर और नसीम ने मेरी ओर देखा। मैंने कहा— हजरत, इसमें किसी अज्ञात कहानी की गंध आती है।

युवक मुस्कराया, पर चुप रहा।

नसीम ने कहा—कहिये न, आख्यायिका-साहित्य के सम्बन्ध में जो कुछ आप कह रहे थे, उसके लिए आपके पास कोई प्रमाण भी है!

युवक ने कहा—क्यों नहीं!

अब हाफ़िज़ साहब भी चौंके और बोले—तो फिर बिस्मिल्लाह, भोपाल तक गाड़ी कोई घण्टे भर में पहुँचेगी, एक कहानी ही सही।

युवक मुस्कराया और...

क़िस्सा शाहज़ादी और मिश्री जादूगर का

'जनाब'—युवक ने कहना शुरू किया—मेरी जन्मभूमि भोपाल ही है। मेरे पिता आरम्भ ही से व्यापार में रुचि रखते थे। मुझे भी उन्होंने व्यापारिक शिक्षा ही दिलवाई और जब मिश्र से हमारा व्यापारिक लेन-देन आरम्भ हो गया तो उन्होंने हमें मिश्र भेज दिया, जहाँ चार वर्ष रहकर मैं व्यापार-सम्बन्धी सब बातों से भलीभाँति परिचित हो गया।

"पिछले साल की बात है। मैं काहिरा में था। एक रात खाना खाकर बाहर निकला तो चलते-चलते मैं आबादी से बहुत दूर निकल

ाया कि एक दर्दभरी आवाज़ सुनकर चौंक उठा।'

जरा खाँसकर युवक ने फिर कहना आरम्भ किया—सड़क के किनारे जिस ओर से आवाज आ रही थी, एक सड़े-गले, गन्दे कपड़ों का ढेर-सा पड़ा था। मैं अनिच्छा-पूर्वक उधर गया क्योंकि स्वभावतया गन्दे फ़क़ीरों से मुझे सदैव घिन आती है।

'इस ढेर में से फिर दर्द-भरी आवाज उठी, देखा तो मालूम हुआ कि एक वृद्ध भिखारिन है—चेहरे पर सीतला के दाग, आँखें गहरे-गहरे गढ़ों में धँसी हुईं, पीली-पीली खाल, शरीर के जो अग दिखाई दे रहे थे, उन पर झुर्रियों का जाल और छोटा क़द—इतनी जर्जर और वृद्ध कि मालूम होता था जैसे सचमुच इस पर दुःख और मुसीबत की सदियाँ गुजर गई हैं।

'मैं समीप पहुँचा तो उसने मेरी ओर देखा और उसकी आँखों में दया की ऐसी याचना थी जैसी उस घायल और बेबस पशु की आँखों में होती है, जो नहीं जानता कि उसे क्यों कष्ट हो रहा है, और नहीं समझता कि इस पीड़ा का दंड उसे क्यों दिया जा रहा है।

'आप यक़ीन जानिये ;'—युवक ने जोश से कहा—उस एक दृष्टि के प्रभाव से मेरी मानसिक प्रवृत्ति तक में एक महान् अन्तर पैदा हो गया। उस घिनावने और कुरूप चेहरे से मुझे घृणा न रही। एक वृद्ध भिखारिन के बदले, मुझे केवल एक विवश और असहाय नारी—मात्र नारी दिखाई दे रही थी।

'मेरे हृदय में अचानक दया और हमदर्दी के समुद्र उमड आये। घुटनों के बल मैं बैठ गया, उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और अपने दायें हाथ से अपने मस्तक का पसीना पोछते हुए मैं झुका। तभी अपने दुर्बल हाथ से आँखों और मस्तक पर पड़ी हुई बालों की शुष्क लटों को उसने हटाया और मैंने देखा कि उसके हाथ की दरम्यानी अँगुली में एक अँगूठी थी जिसमें पन्ने का नगीना जड़ा था।

उसी नगीने पर अलफ * खुदा हुआ था। उस दृष्टि में ऐसी करुणा, ऐसी व्यथा थी कि सहानुभूति का एक समुद्र मेरे हृदय में उमड़ आया और क्षणिक आवेश के अधीन उस मैली-कुचैली घृणास्पद बूढ़ी भिखा-रिन के मस्तक को मैंने चूम लिया। बुढ़िया अचानक उठी और इससे पहले कि मैं हैरान भी हो सकूँ, मेरी ओर एक विशेष स्नेहमयी दृष्टि डालती हुई रात के अँधेरे में गुम हो गई।

'दूसरे दिन शाम की डाक से मुझे एक पारसल मिला जिसमें एक अँगूठी थी।'

यह कहकर युवक ने अपने दायें हाथ की दरम्यानी अँगुली हमारी ओर बढ़ा दी। और बोला—

'इस अँगूठी पर जैसा कि आप देख रहे हैं 'अलफ़' खुदा हुआ है। आप शायद जानते हों कि अलफ़ का अर्थ अर्बी में सरल है। आप देखिये कि इस नगीने के इर्द-गिर्द एक साँप की शक्ल बनी हुई है। यह साँप मिश्र के फरअनों (सम्राटों) के वंश का शाही निशान था। यह समझकर कि किसी व्यापारी ने अँगूठी भेजी है और नाम और पता लिखना भूल गया है, मैंने शाम को यह अँगूठी मिश्र में रहनेवाले अपने एक घनिष्ठ मित्र खालिदबे को दिखलाई।

'अँगूठी को देखकर खालिदबे चौंका। कुरेद-कुरेदकर उसके सबंध में उसने मुझसे प्रश्न पूछने शुरू किये। मैंने सब हाल विस्तार से बयान कर दिया। वह कभी अँगूठी की ओर देखता, कभी मेरी ओर। अन्त में मेरे अनुरोध पर उसने कहा— शायद तुम्हें मालूम हो, यह अँगूठी मिश्र के फराअन सम्राटों के वंश का चिह्न है, जिसे शाही वंश के लोगों के अतिरिक्त कोई न पहन सकता था। इसके सम्बन्ध में यह कहानी प्रसिद्ध है कि आज से कई वर्ष पहले मिश्र की एक राजकुमारी अपने मंदिर

---

* [illegible]

की क्रूरता से तंग आकर एक साधारण मिस्री के साथ भाग गई। शाहज़ादी और उसका प्रेमी मिस्र में जगह-जगह घूमते रहे; पर अन्त को निर्धनता के कारण राजकुमारी की मुहब्बत का जोश ठण्डा पड़ने लगा। एक दिन वह मिस्री शाहज़ादी को कोठरी में छोड़कर एक जादूगर के पास गया और वहाँ उसके आश्चर्यान्वित कर देनेवाले करतबों को देखकर उसने उससे प्रार्थना की कि उसे दिखाये कि शाह-ज़ादी उसकी अनुपस्थिति में क्या कर रही है। मिस्र के उस जादूगर ने एक गिलास की ओर इशारा किया और इसमें उस प्रेमी ने अपनी प्रेयसी को एक दूसरे व्यक्ति के आलिंगन में हँसते हुए देखा और क्रोध और ईर्ष्या से वह पागल-सा हो गया। उसने जादूगर के कदमों पर सिर रख दिया और रोकर उससे प्रार्थना की कि वह अपने जादू के ज़ोर से इस बेवफ़ाई का बदला ले। जादूगर ने वहीं खड़े-खड़े मन्त्र पढ़कर हवा में पाँच बार पानी छिड़का। तब उस प्रेमी को फिर शीशे का गिलास देखने को कहा। उसने देखा कि शाहज़ादी के स्थान पर एक अत्यन्त बुढ़िया स्त्री है और वह उसका नया प्रेमी डर से उसकी ओर देख रहा है।

जादूगर ने कहा—अब वह इसी हालत में भीख माँगती फिरेगी, उसका रूप कुरूपता में बदल जायगा और उसे देखने मात्र से घृणा आयेगी। इस हालत में वह उस वक्त तक रहेगी, जब तक एक सहस्र आदमी मात्र सहानुभूति से विवश होकर उसके मस्तक को न चूम लेंगे। मिस्रवालों का विश्वास है कि सहस्रों वर्ष से वह बुढ़िया भिखारिन मिस्र में फिर रही है। जब कोई आदमी उसके मस्तक को चूमता है तो वह उसे एक अँगूठी भिजवा देती है जिस पर चुम्बनों की गिनती लिखी होती है।—यह कहकर खालिदबे ने अँगूठी की ओर देखा और बोला—देखो, इस पर अलफ़ खुदा हुआ है, यह अन्तिम अर्थात् सहस्रवाँ चुम्बन था। अब शाहज़ादी अपने वास्तविक रूप में आ चुकी होगी।

'स्वभावतया'—युवक ने मुस्कराकर कहा—मुझे इस बात का

विश्वास नहीं हुआ और दिल ही दिल में मैं इस बात पर हँसता रहा कि ये मिश्र के लोग कितने पुराने खयाल के होते हैं कि गधों पर ही विश्वास किये बैठे हैं ; पर उसी शाम मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब होटल के मुलाज़िम ने मुझे एक खत लाकर दिया जिसमें यह लिखा था—

'मसजिद हसन के पास दायीं ओर तीसरे मकान में आज शाम को सात बजे आओ।'

'जनाब,'—युवक ने कहा—खत इतर से सुगन्धित किया गया था, लिखावट किसी स्त्री की मालूम होती थी, और मैं आयु के उस हिस्से से गुज़र रहा था, जिसमें समझ और सोच को दखल नहीं होता। बिना किसी तरह का सोच किये मैं उस मकान में चला गया और मैंने देखा—एक सुन्दर कान्त कामिनी पूर्व की समस्त सुन्दरता और मिश्र और काहरा के समस्त रूमान को लिये रेशमी कपड़ों में आवृत और इतर में बसी, दोनों हाथ बढ़ाये मेरी ओर बढ़ी। उसके हाथ में इसी प्रकार की रहस्य-भरी अँगूठी थी, जो मुझे मिली...'

हाफ़िज़ साहब ने उत्सुकता से पूछा—फिर ?

'फिर'—नवयुवक ने बेपरवाही से कहा—जो कुछ हुआ वह बताने से सम्बन्ध नहीं रखता।

मैंने कहा—लेकिन यह तो बताइये...

पर जो कुछ मैं पूछना चाहता था, वह शोर में गुम हो गया। गाड़ी भोपाल के प्लेट फार्म पर थी और खोंचावालों की आवाज़ और मुसाफ़िरों की चीख-पुकार से कानों के पर्दे फटे जाते थे।

युवक ने अपना सूट केस सम्हाला, गाड़ी रुकी, एक बुज़ुर्ग डिब्बे में दाखिल हुए और युवक को देखकर बड़े तपाक से मिले। नवयुवक भी बड़े अदब से मिला और फिर यह कहकर कि आप भोपाल में ही से बड़े होंगे,—डिब्बे से उतर गया।

कुछ क्षण तक कमरे में खामोशी रही। अन्त को मैंने उन बजुर्ग से पूछा—क्यों जनाब, यह साहब जो अभी उतरे हैं, भोपाल के ही रहनेवाले हैं ?

'जी।'—उन्होंने सक्षिप्त उत्तर दिया।

नाज़िम ने पूछा—तो मिश्र कितने वर्ष बिताये इन्होंने ?

'मिश्र!'—उन्होंने आश्चर्य से नाज़िम की ओर देखा—मिश्र तो यह कभी गये ही नहीं। यहाँ भोपाल में सरकार के पुरातत्त्व-विभाग में हेडक्लर्क हैं।

मैंने ज़रा ज़ोर देकर कहा—आपको यकीन है कि ये कभी मिश्र नहीं गये ?

उन्होंने तेवर चढाकर कहा—जी यक़ीन है, मेरे सामने खेले, बडे हुए, नौकर हुए, जब से पैदा हुए तब से भोपाल में ही हैं।

फिर सहसा वे हमारी ओर देखकर हँसे।—ओह!—उन्होंने कहा—कोई कहानी तो नहीं सुनाई उसने आपको ! भई बड़ा ही शरीर लड़का है .

हम सब गम्भीरता से खिड़कियों के बाहर झाँक रहे थे और उन बजुर्ग को हँसी का दौरा पड़ रहा था।

अख्तर हुसैन रायपुरी

श्री अख्तर हुसैन रायपुरी, रायपुर (सी० पी०) के निवासी है और आज के नवयुवक उर्दू-कहानी-लेखकों मे एक ऊँचा स्थान रखते है। आपने हिन्दी मे भी लिखा है। भाषा मे आपकी हिन्दी के शब्द भी पाये जाते है। वह बहुत ही स्वाभाविक और पात्रानुकूल होती है।

आपकी कहानियाँ कुछ उस प्रकार की चीजें है, जिन्हें हम आज प्रगतिशील के नाम से पुकारते है। आपने पुरानी परिपाटी को त्यागकर जीवन और मृत्यु के संघर्ष की कहानियाँ लिखी है, जो आज प्रगतिशील के नाम से पुकारी जाती है और आज के समाज की माँग है। इस प्रकार की कहानियाँ लिखने मे श्री अख्तर हुसैन को अद्वितीय सफलता मिली है। कला के लिए वह किसी भी दृश्य अथवा वर्णन को अश्लील नहीं मानते। सच ही उनकी कहानियों में इतना बल है कि वे हमें हिला देती है।

'मरघट' मे आपकी कहानियों के सभी गुण विद्यमान है। इसे पढ़कर कौन न एक बार काँप उठेगा? कितनी सच्ची तसवीर है; पर कितनी कटु! आज हमें इसी प्रकार के धक्कों की जरूरत है, क्योंकि हम सदियों से भावनाओं की मजबूत जंजीरों मे जकड़े हुए है और अब अधिक निद्रा या तन्द्रा मौत की सूचक होगी।

मरघट

मरघट

मरघट नदी के किनारे था, छोटा-सा मैदान, जिसमें कभी कुछ न उगता था और उसकी मिट्टी सियाह थी—काली, जमे हुए रक्त की भाँति।

नदी के किनारे के पेड़ों पर सदैव पतझड़ निवास करता था और उनकी शाखाएँ अकाल-पीड़ित मनुष्यों की भाँति सदैव बादलों का मुँह ताका करती थीं। इन पर गिद्धों और कव्वों के अतिरिक्त कोई पक्षी न बैठता था। दूर तक हड्डियों के टुकड़े बिखरे पड़े थे और यहाँ-वहाँ एक आध खोपरी जीवन के अंजाम पर बाछें चीरकर हँस पड़ती थी। नदी की धार धीरे धीरे बहती चली जाती थी। कभी कोई मौज घाट से टकराकर सिर उठाती, मरघट की उदासी को देखती और फिर सिर झुकाकर अपनी राह लग जाती थी।

वहीं, उस साँझ नगर के लोग किसी की अर्थी लेकर आये थे।

मृतक का शव चिता पर रख दिया गया। एक वृद्ध ने उस पर घी छिड़का, एक अल्पवयस्क लड़के ने आग दिखाई और किसी गरीब की झोपड़ी की भाँति चिता धू-धू करके जल उठी।

पुरुष एक ओर उदास बैठे रहे, स्त्रियाँ दूसरी ओर बाल नोच-नोच कर रोती रहीं।

तेज़ी के साथ चिता जल चली। दो आदमी लम्बे-लम्बे बाँसों से लाश को इधर-उधर लोटाने लगे। मांस के अधजले टुकड़े उड़-उड़-कर धरती पर गिर पड़ते थे और शृगालाएँ कुत्तों की भाँति हड्डियों को जबड़े में दबाकर चटखारा भरती थीं और अन्धी आँखों से हर तरफ़ घूरती थीं।

अँधेरा हो चला था। बादलों के दो-चार गुलाबी टुकड़े ऊपर उड़ रहे थे और एक दो तारे तीरों की नोक की भाँति आकाश में चुभे हुए थे। हर तरफ़ सन्नाटा था। हड्डियों की कड़कड़ाहट के अतिरिक्त कोई आवाज़ न आती थी।

अम्बी लोहार ने अँगोछे के कोने से चिलम निकाली और चिता का एक अङ्गारा इस पर रखकर चिता के साथ आये हुए लोगों में से ऐसे व्यक्ति की खोज करने लगा जो उसकी भाँति ही बातचीत करने को आतुर हो, पर वातावरण कुछ कठिन-सा था और सबकी, मौत की उपस्थिति में कुछ खो-सी गई थी।

अम्बी लोहार ने दोनों मुट्ठियों में चिलम थामकर इस ज़ोर का कश खींचा कि अंगारा दहक उठा और कई चिनगारियाँ ऊपर उछल पड़ीं, फिर उसने किसी अज्ञात मित्र को सम्बोधित करके कहना आरम्भ किया—हाँ बेटा! राम जाने, गोली उसकी छाती ही में मारी। मैं सामने ही खड़ा, सब देख रहा था। वह [illegible] आगे भागा था। जब [illegible] के पास पहुँचा [illegible] पुलिस के [illegible] मुझे [illegible] दे, जवान ने हँसकर कहा—आगे जाने का [illegible] है।

भैया, और तो सब बगलें झाँकने लगे ; लेकिन इन छोकरों का कलेजा बड़ा है, उन्होंने कहा—हम आगे जायँगे, मार्ग छोड़ दीजिये !

छोटू बात काटकर बोला—क्या कहते हो, इतनी बातचीत करने का अवकाश किसे था ! पुलिस आँधी की भाँति हम पर झपटी, भागने का अवसर ही कब मिला ; जैसे बे-कड़के बिजली गिर पड़े। कई भागते भागते गिरकर घोड़ों की टाप के नीचे आ गये, कई रपटकर मुँह के बल गिरे, कोई नाली में, कोई सड़क पर, लाठियों से जिनके हाथ-पाँव टूटे, उनकी बात अलग है।

अजबी—अच्छा यही सही...जो भी हो, वह था वीर ! झण्डा लिये हुए अपनी जगह पर डटा रहा, इतने में कोठों से पत्थर बरसने लगे और उधर से बन्दूकों की गोलियाँ। भैया, जैसे आँधी में आम का हरा-भरा पेड़ गिर पड़े, बस वैसे ही पल भर में ऐसा पहाड़-सा जवान छलनी होकर गिर पड़ा।

सब ख़ामोशी से आग में किसी चीज़ को घूर रहे थे। घटाटोप अँधेरे में वह चिता ऐसे लगती थी, जैसे धरती पर बिजली चमक रही हो।

नायक ने ज़ोर से कहा—राम नाम सत्य है ! काल सिर पर खड़ा है, तो किसका बस चलता है। यदि यह मा का पूत (पुत्र) वहाँ से भाग जाता तो क्या था, पर वह तो कहो भाग (भाग्य) का बदा टलता नहीं।

लक्खू मिस्तरी ने आँखें तरेरकर कहा—अरे, मेरा बेटा और भाग जाता !...विवशता की दृष्टि उसने सब ओर डाली।—'ऐसी बात न कहो भाई, उसकी आत्मा को दुःख होगा, वह नादान सही : पर दूसरों की भाँति दुर्बल न था, उसे अपने देश के झंडे की लाज थी।'

'ऊँह,'—नायक ने कहा—अजी, तीन बालिश्त कपड़े से कहीं देश की लाज आती-जाती है। क्या बात करते हो। मैं तो तुम्हारा ही भला सोचकर कहता हूँ। क्या मुझे इसके मरने का दुःख नहीं ! अरे, मैं तो

इसलिए कहता हूँ कि इस बुढ़ापे में तुम्हें कौन पालेगा ? जवान बेटा, घर का मुकुट, उसके छोटे-छोटे बच्चे, वृद्ध माता-पिता, ये सब कहाँ जायँगे ! क्या देश तुम्हें रोटियाँ देगा !

लक्खू ने दीर्घ निश्वास छोड़ा। उसका पड़ोसी सच कहता था। अब वह क्या करेगा। देश तो अमीरों के लिए था, ग़रीबों का देश कहाँ है ! धरती का किराया, पानी का कर, रोशनी का टैक्स, और जब मर जाओ तो मरघट के चौधरी का नज़राना ! इन सबसे अधिक देवता का भोग, वह काना देवता जो उफराये हुए मेंढक की भाँति अपने सिंहासन पर बैठा अपनी दुम हिलाया करता है।

पर नहीं, इसका बेटा क्या ऐसा मूर्ख था ? उसने जान-बूझकर अपनी जान दी थी ?—लक्खू के मस्तिष्क में इसी तरह के विचारों का जाल-सा बँध गया।

शम्भू ने सिर हिलाकर कहा—आज सुबह तक वह भला-चंगा था। वह हथौड़े की एक-एक मार से लोहे को पानी कर रहा था; पर अब देखो, सीसे की एक छोटी सी गोली हवा में सनसनाती आई और बिना कुछ कहे उसकी छाती में घुस गई; हड्डी को तोड़कर, गोश्त को चीरकर वह दिल के अन्दर बैठ गई और वह मर गया। हाय राम, जीना कितना कठिन है और मरना कितना सुगम !

अमर्थी लोहार ने धुएँ को मुँह के आगे से हटाकर कहा—और जब आदमी मर जाता है, तो क्या छोड़ जाता है ? नाम तो बड़े आदमियों का रहता है, ग़रीबों का नाम-धाम क्या ! वे तो भाई-बन्दों के लिए अपनी याद छोड़ जाते हैं और वह याद जीवन-भर काँटे की भाँति चुभती है। दिलों की दुखी नाड़ पर मरहम का काम करती है। मर जाने-वाले घरों में रह जाते हैं। और कभी सोचो तो लगता है कि जिन्दगी सपने की कहानी है।

लक्खू चुपचाप बैठा रहा। जिन लोगों ने उसके बेटे के हाथ में

झंडा थमाया था, वे कहाँ थे ? वे तो इस मरघट में नहीं थे, वह सब बड़े लोग थे, वे शूद्रों के मरघट में कैसे आते ?

पर क्या उसके बेटे ने ग़लती की थी ? क्या समझकर उसने वह झंडा अपने हाथ में लिया और गोलियों के सामने क्यों वह सीना ताने खड़ा रहा ? क्या उसे किसी का ध्यान नहीं आया ?

स्त्रियों के बैन धीमे पड़ गये थे। वे अपनी सूजी हुई आँखों से चिता को ताक रही थीं जिस पर अब शव का नाम-निशान तक भी नहीं था।

लक्खू का शरीर क्रोध से काँप उठा। संसार इतना स्वार्थी क्यों है ? उसके बेटे ने दूसरों के लिए अपना जीवन निछावर कर दिया, अपनों को भुलाकर वह दूसरों के लिए मर मिटा और ये लोग यहाँ बैठे बातें बना रहे हैं !

नायक ने धीरे से कहा—अजबी, देखो और कितनी देर है ? भूख के मारे प्राण मुँह को आ रहे हैं।

इतने में छोटू ने आँखें फाड़कर सबको इस तरह देखा, जैसे उसे कोई भूली बात याद आ गई हो।

'करीमखाँ हवालदार कहता था कि अर्थी के साथ जो लोग मरघट जायँगे, सरकार में उनकी रपट की जायगी।'

'ऐं, यह क्यों ?'

'इसलिए कि वह सरकार का बैरी था। भाई, समझते नहीं ; उसने गोली नहीं चलाई तो क्या, गोली खाई तो। फिर वह बैरी हुआ या नहीं ?'

'हूँ !'—नायक ने कपड़े झाड़ना आरम्भ किया—ठीक कहते हो। वह किसी ऐसे-वैसे की गोली से नहीं, सरकार की गोली से मरा। विकट (विक्ट) मामला है ; क्यों जी अजबी !

अजबी अपनी झोली सम्हालने लगा—टेढ़ी बात है, और करीम-

खाँ हवालदार कोई मामूली आदमी है ! अजी बड़े-बड़े महाजन उसके नाम से काँपते हैं। जिसके घर चाहे डाका डलवा दे और जिसे चाहे चोरी के अभियोग में बँधवा दे। आज नगर में इसी का राज है।

सब लोग डरकर दायें-बायें इस तरह देखने लगे, मानो करीमखाँ का भूत उन्हें निगलने को आ रहा हो। तारों की छाया में पेड़ों के ठूँठ अपने निर्बल हाथ फैलाये अँधेरी रात से किसी चीज़ की भीख माँग रहे थे।

लवगू घुटनों पर सिर रखे अर्ध चेतनावस्था में बैठा रहा। बहुत से लोग एक-एक करके सरक गये और जब आग मद्धम पड़ी तो केवल चार पाँच आदमी रह गये थे।

लवगू का दिल अन्दर से रोने लगा। देश और देशवाले! उन्होंने ऐसा क्यों किया! मौत के आगे तो सब बराबर हैं। सब को एक दिन इसी आग में जाना है, इसी पानी में सबकी राख को बह जाना है फिर इतना भी नहीं कर सकते कि कुछ लोगों के लिए आयें और मरनेवाले की विधवा के दो आँसू पोंछ जायें उसकी माँ के टूटे हुए दिल पर हमदर्दी का एक फाहा रख जायें।

सेठ छुन्नूमल—कांग्रेस-कमेटी के प्रधान! क्या वे उसके युवा पुत्र की जान लेने के बाद भी उसका कर्ज माफ न करेंगे!

कुँअर प्रतापसिंह—वीर देशभक्त! क्या करीमखाँ हवालदार के फंदे से वे उसे न बचायेंगे!

बरसात आ रही है, घर का छप्पर छाना है, दीवार को खड़ा करना है, टट्टी को ठीक करना है, पर उसकी भुजाओं में वह पहले का सा बल कहाँ! लवगू का बेटा, एक ज़रा-सी खाँसी में [illegible]—वह न जिन्दगी के [illegible] हुई—मर गया और आग उसे खा गई।

चिता ठंडी होने लगी, किसी ने उसमें पानी का छींटा दिया, किसी ने राख पर झुकके और किसी ने 'राम नाम सत्य है' की आवाज़ दी

अहमद अली

श्री अहमद अली लखनऊ युनिवर्सिटी के एम० ए० हैं और आजकल वहीं अंग्रेजी के अध्यापक हैं। आप भी प्रगतिशील स्कूल के प्रतिनिधि हैं। आपकी कहानियाँ भी श्री रायपुरी की ही भाँति समाज और दुनिया की बड़ी कड़ी आलोचनाएँ हैं। उनमें शक्ति है और मर्म को छूने की क्षमता है। अपने चित्रण में श्री अहमद अली बहुत यथार्थवादी हैं और उन्हें उस दिशा में अच्छी सफलता मिली है।

श्री अहमद अली की कहानियाँ कहानी की कला की दृष्टि से भी आदर की वस्तु हैं। उर्दू के बहुत कम ऐसे कहानी-लेखक हैं जो कला का ध्यान रखते हों। आपकी कहानियों में कला का पहला प्रदर्शन तो इस बात से होता है कि आप अपनी हर कहानी के लिए केवल एक घटना, एक भाव, एक प्रभाव या किसी एक विषय को चुन लेते हैं और उसी के चित्रण में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देते हैं। और इस प्रकार सफल कहानियाँ लिख लेते हैं। भाषा आपकी सीधी सादी साधारण बोल-चाल की हिंदुस्तानी होती है।

'हमारी गली' आपकी एक बहुत मशहूर कहानी है। इसमें आपने जो सजीव चित्र खींचा है वह नग्न सत्य है और हमारे मन पर आघात करता है। उसका प्रभाव स्थायी रहता है।

हमारी गली

अहमद अली

श्री अहमद अली लखनऊ युनिवर्सिटी के एम० ए० हैं और आजकल वहीं अंग्रेजी के अध्यापक हैं। आप भी प्रगतिशील स्कूल के प्रतिनिधि हैं। आपकी कहानियाँ भी श्री रायपुरी की ही भाँति समाज और दुनिया की बड़ी कड़ी आलोचनाएँ हैं। उनमें शक्ति है और मर्म को छूने की क्षमता है। अपने चित्रण में श्री अहमद अली बहुत यथार्थवादी हैं और उन्हें उस दिशा में अच्छी सफलता मिली है।

श्री अहमद अली की कहानियाँ कहानी की कला की दृष्टि से भी आदर की वस्तु हैं। उर्दू के बहुत कम ऐसे कहानी लेखक हैं जो कला का ध्यान रखते हों। आपकी कहानियों में कला का पहला प्रदर्शन तो इस बात से होता है कि आप अपनी हर कहानी के लिए केवल एक घटना, एक भाव, एक प्रभाव या किसी एक विषय को चुन लेते हैं और उसी के चित्रण में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देते हैं। और इस प्रकार सफल कहानियाँ लिख लेते हैं। भाषा आपकी सीधी-सादी साधारण बोल-चाल की हिंदुस्तानी होती है।

'हमारी गली' आपकी एक बहुत मशहूर कहानी है। इसमें आपने जो सजीव चित्र खींचा है वह नग्न सत्य है और हमारे मन पर आघात करता है। उसका प्रभाव स्थायी रहता है।

हमारी गली

हमारी गली

मेरा मकान चेलों की गली में था। मेरे कमरे के दरवाज़े में दो पट थे। नीचे का हिस्सा बन्द कर देने से केवल ऊपर का हिस्सा एक खिड़की की तरह खुला रह जाता था। यह खिड़की पतली सड़क पर खुलती थी। सामने दूधवाले मिर्ज़ा की दुकान थी, और मेरे मकान के दरवाज़े के बराबर सिद्दीक़ बनिये की, और उसके पास अज़ीज़ खैराती की। आस-पास कहारों की दुकानें, अत्तार की दूकान, पानवाले की, और दो-चार दूकानें थीं ; जैसे—क़साई, बिसाती और हलवाई की दूकानें।

हमारे मुहल्ले से होकर लोग दूसरे मुहल्लों को जा सकते थे। इसलिए सड़क बराबर चला करती और तरह-तरह के लोग रास्ता बचाने के लिए मेरी खिड़की के सामने से जाते। कभी कोई सफ़ेद कपड़ा पहने गर्मी की चिलचिलाती धूप में छाता लगाये हुए चला

जाता ; कभी शाम को कोई विलायती मुण्डा पहने, अंग्रेज़ी टोपी लगाये छिड़काव के पानी से बचता हुआ, अपने कपड़ों को छींटों से बचाता, बच्चों और लड़कों से अलग होता हुआ या उनके घूरने पर गुर्राता और आँखें निकालता हुआ नाक की सीध चला जाता। कभी-कभी रास्ता चलनेवाला तङ्ग आकर लड़कों को मारने के लिए लकड़ी या छाता उठाता। दूर भागकर लड़के चिल्लाते—लूलू है वे, लूलू है। दूधवाले मिर्ज़ा की भर्राई हुई बोली सुनाई देती—अबे लौंडो, क्या करते हो? तुमको घरों में कुछ काम नहीं।—और अगर कोई पास बैठा होता तो मिर्ज़ा उससे कहने लगता—इनकी माओं को तो देखो, लौंडों को छोड़ रखा है कि साँड़-बैलों की तरह गलियों में रौला मचाया करें। हरामज़ादों को गाली-गलौज और धींगा-मुश्ती के अलावा कुछ और काम ही नहीं।

मिर्ज़ा की छोटी छोटी आँखें चमकने लगतीं, वह अपनी सफ़ेद तिकोनी दाढ़ी पर एक हाथ फेरता और किसी खरीदनेवाले की ओर देखने लग जाता। कुण्डे में से दही और कड़ाहे में से दूध निकालकर मलाई का टुकड़ा डालता और लेनेवाले की ओर बढ़ा देता।

लोग कहते थे कि मिर्ज़ा की धमनियों में मुग़लशाहत का ख़ून दौरा करता है। लड़कपन में सबक़ याद न करने पर उसके बाप ने उसको घर से निकाल दिया और कुछ दिन मारे-मारे फिरने के बाद उसने दुकान कर ली। उसके पीछे अक्सर उसके बाप ने क्षमा माँगी और ख़ुशामद भी की, लेकिन मिर्ज़ा ने घर लौट जाने से इनकार कर दिया। फिर मिर्ज़ा ने विवाह कर लिया और उसका काम चल निकला। उसकी दुकान के [illegible] मलाई के पेड़े शहर-भर में प्रसिद्ध थे और उसका दूध बड़ा स्वादिष्ट होता था। रात को जब कोई दूध लेने आता तब वह उसको कड़ाहे और कुल्हड़ से खूब उछालता; यहाँ तक कि कुल्हड़ से झाग निकलने लगता। फिर ऊपर से मलाई का टुकड़ा डाल

सावधानी से तोड़ता कि दूध हिलने तक न पाता। उसकी बीवी अक्सर दूकान पर बैठा करती। वह बूढ़ी हो गई थी, उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं, उसकी कमर झुक गई थी और मुँह में एक दाँत बाकी न था। उसके ऊँचे डीलडौल और गोरे रंग से मालूम होता था कि वह किसी अच्छे घराने की औरत है।

लेकिन अब उनका काम-काज कम हो गया था, क्योंकि बुढ़ापे के कारण वे अब ज्यादा मेहनत न कर सकते थे। उनका इकलौता बेटा मर चुका था और अब उनका हाथ बँटानेवाला कोई न था। असहयोग के दिनों में जब आज़ादी के विचार देश में इधर से उधर हलचल मचाये हुए थे, मिर्ज़ा का लड़का अपने साथियों के साथ जलूस में गया था। 'गांधी की जय' और 'वन्दे मातरम्' के नारों से वातावरण गूँज रहा था। घण्टा घर पर गोलियों की बौछार में बहुत से आदमी काम आये और मिर्ज़ा का बेटा भी मरनेवालों में था। बड़ी देर के बाद जब लाश ले जाने पर कोई रोक न रही तब लोग मिर्ज़ा के लड़के की लाश को उसके घर लाये।

सारी दूकानें बन्द थीं। मुहल्ले में सन्नाटा छाया हुआ था। जाड़ों की धूप ठण्डी और बेजान-सी देख पड़ती थी। नालियों में सफाई न होने के कारण उनमें सड़ान फूट रही थी। जब लाश घर आई तब मिर्ज़ा और उसकी बीवी सन्न रह गये। उनको किसी तरह विश्वास न होता था कि उनका बेटा जो अभी-अभी ज़िन्दा था, हँस बोल रहा था, जिसने सवेरे ही पेड़े बनाये थे, कढ़ाई माँजी थी, जो कपड़े पहनकर अपने किसी साथी से मिलने गया था, अब ज़िन्दा नहीं; बल्कि मर चुका है। वे बार-बार खून से लथपथ लाश को देखते थे। मिर्ज़ा की बीवी लाश से लिपटकर फूट-फूटकर रो रही थी। लोगों ने उसको अलग करना चाहा लेकिन वह एक मिनट के लिए भी लाश से अलग न होती थी। वह 'हाय मेरे लाल, हाय मेरे लाल' कह-कहकर रोती थी

और कभी-कभी उसके मुँह से ज़ोर की चीख निकल जाती थी। मिर्ज़ा पागलों की तरह, कभी घर के अन्दर और कभी बाहर बौखलाया फिरता था। सिद्दीक़ बनिये ने अपनी दूकान खोल ली थी। मिर्ज़ा जब बाल बिखेरे हुए उधर होकर गया तब सिद्दीक़ ने आवाज़ दी और पूछा—भाई, बड़ा अफ़सोस हुआ। क्या वाक़या हुआ ?

मिर्ज़ा की आँखों में एक भी आँसू बाक़ी न था लेकिन उसके सारे चेहरे पर शोक अंकित था। 'तक़दीर फूट गई, मेरा पला पलाया लड़का जाता रहा !'—यह कहकर मिर्ज़ा फिर घर की ओर चला गया।

खरीदनेवाले जो खड़े थे, पूछने लगे—क्या हुआ ? सिद्दीक़ ने मुड़कर देखा। उसी समय हवा का एक तेज़ झोंका आया, गर्द और गुबार उड़ने लगा। एक काग़ज़ का टुकड़ा हवा में उड़ा और कुछ दूर ऊपर जा उलटता-पुलटता नीचे की ओर गिरने लगा। मिर्ज़ा के बाल हवा में उड़ रहे थे और वह गली में छुप-सा गया।

'बस हुआ ! असहयोग करने गया था, गोली लगी और मर गया। न जाने अपने काम में जी क्यों नहीं लगाते ! सरकार के खिलाफ़ जाने का नतीजा यही है। तगड़ा जवान था। इन दोग़ले के भौंटों और खद्दर पोशों का शिकार हो गया।'—यह कहते-कहते सिद्दीक़ ने मटके के मुँह में एक चमचा डाला। बहुत से मटके दीवार में गड़े हुए थे और कबूतरखाने की तरह देख पड़ते थे। चमचे से दाल निकालकर सिद्दीक़ ने गाहक की ओर बढ़ाई। गाहक जो चमचा हो सिद्दीक़ की बातें सुन रहा था, दाल को अपने कपड़े में बाँधने लगा कि एकाएक उसे दाल देख पड़ी और वह कहा—वाह मियाँ बादशाह, यह कौन-सी दाल है [illegible] मैंने तो अरहर की माँगी थी, [illegible]

[illegible]

इस घटना का समाचार मिला तब वह सान्त्वना देने के लिए आई। उसका जवान लड़का भी दीवार के नीचे दबकर मर गया था और वह अपने नन्हे नन्हे बच्चों को सिलाई करके पालती थी। दोनो गले मिलकर खूब रोई। और मिर्ज़ा की बीवी को तनिक धैर्य हुआ। आखिर लड़के को दफ़न करने ले गये। रात अँधेरी थी और बेबसी अँधेरे की तरह सारे में फैली हुई थी।" हवा ठण्डी थी और मुहल्ले में झील के कारण जाडा और भी मालूम होता था। लैम्पों की धीमी रोशनी में मुहल्ला भयानक और डरावना मालूम हो रहा था। सडक पर कोई सजीव वस्तु नहीं देख पडती थी, केवल मिर्ज़ा की दूकान में कई एक बिल्लियों के गुर्राने और गडबड की आवाज़ आ रही थी।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद तक भी अक्सर मिर्ज़ा की बीवी के दर्द से भरे गाने की आवाज़ आया करती—

गई यक बयक जो हवा पलट,
नहीं दिल को मेरे क़रार है।

लेकिन फिर वह चुप रहने लगी और काम-काज मे लग गई।

× × ×

मेरे मकान की ड्योढी में खजूर का एक पुराना पेड़ था। एक जमाने में उसमें फल लगा करते थे और शहद की मक्खियाँ खाने की खोज में नीचे उतर आती थीं। उसकी बड़ी-बड़ी डालों पर प्रायः जानवर आकर बैठते थे और भूले-भटके कबूतर रात को बसेरा लिया करते थे। लेकिन अब उसके पत्ते झड गये थे। डालियाँ गिर चुकी थीं, और उसका तना काला और भयानक, रात के अँधेरे में उस बाँस की तरह खड़ा रहता जो खेतों में जानवरों को डराने के लिए गाड़ दिया जाता है। अब न उस पर जानवर मँडराते थे, न शहद की मक्खियाँ उस ओर आती थीं। हाँ, कभी-कभी कोई कौआ उसके ठूँठ पर बैठकर काँव काँव करता और अपना गला फाड़ता या कोई चील थोडी देर

बैठकर चिलचिलाती और फिर उड़ जाती। सवेरे के बढ़ते हुए प्रकाश में तना आकाश में चमक उठता, लेकिन सायकाल को सूर्य के विश्राम करने के पश्चात् रात की बढ़ती हुई अँधेरी में धीरे-धीरे दृष्टि से ओझल हो जाता और रात में मिल जाता। रात को प्रायः घर आते समय मेरी दृष्टि उसके मोटे और भयानक तने पर पड़ती, फिर उसके साथ-साथ उड़ती हुई आकाश पर जाती। तारे चमकते हुए होते और ठीक उसके सिरे पर...का अन्तिम तारा मुझको दिखाई देता, लेकिन वह तना मेरी दृष्टि और आसमान के बीच एक प्रकार से रुकावट डालता और मैं तारों के फैलाव को न देख सकता।

× × ×

मुहल्ले में प्रायः एक पागल औरत आया करती। किसी ने उसके बाल काट दिये थे और उसका सिर उसकी मोटी और भारी देह पर एक अखरोट की भाँति दिखाई देता। दयालु पुरुष कभी-कभी उसे कपड़े पहना दिया करते, लेकिन कुछ ही घण्टों के बाद वह फिर नंगी हो जाती थी। या तो कोई कपड़ों को उतार लेता या खुद उनको फाड़कर फेंक देती। उसके मुँह से हमेशा लार बहा करती और उसके हाथ अकड़े हुए रहते। वह प्रायः मटक-मटककर सड़क पर नाचती, थिरकती और गूँगों की तरह कुछ गुन-गुन करती। जैसे ही वह मुहल्ले में आती, लड़कों का एक गोल उसके पीछे तालियाँ बजाता और पगली कह-कहकर पत्थर फेंकता और मुँह चिढ़ाता। औरत 'ऊँ ऊँ' करती और कोनों में छिपती फिरती। जब कभी मिर्ज़ा की दुकान के सामने से जाती तब मिर्ज़ा लड़कों पर चिल्लाता—अबे सुअर, तुम्हें शरम नहीं है। भागो यहाँ से, दूर हो!—लेकिन थोड़ी ही देर के बाद लड़के फिर इकट्ठे हो जाते।

बड़े आदमी भी प्रायः उससे मज़ाक करते। वह बदसूरत ज़रूर थी, लेकिन उसकी उम्र ज़्यादा न थी। उसका पेट बढ़ा हुआ था और

अक्सर मुन्नू जो खाते-पीते घराने का लड़का था, लेकिन अब बद-माशों से मिल गया था, कहता—क्यों! तेरे बच्चा कब होगा?—और पगली एक दर्द-भरी, जानवरों की-सी आवाज़ निकालती और अपने हाथ आगे बढ़ाके जो ढीले और लिजलिजे रहते—किसी राहगीर या दूकानदार की ओर कर मुन्नू की ओर संकेत करती। उसकी उस भर्राई हुई आवाज़ में एक विनय होती, बेकस व बेबस व्यक्ति की वह प्रार्थना, जो वह अपने स्वामी या अपने से अधिक शक्तिशाली से करता है कि मुझे क्षमा करो और बचा लो।—लेकिन और लोग भी मज़ाक करने में मिल जाते और ज़ोर-ज़ोर से कहक़हा लगाकर हँसते...।

हिन्दुस्तान में हज़ारों लोग ऐसे हैं जिनको सिवा खाने-पीने और मर जाने के और किसी बात से मतलब नहीं। वे पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, कमाने लगते हैं, खाते-पीते हैं और मर जाते हैं। इसके सिवा उनको दुनिया की किसी बात से कोई मतलब नहीं। आदमियत की गन्ध उनमें नहीं आती। जीवन की महत्ता का उनको कोई ज्ञान नहीं। जिस प्रकार गुलाम को काम करने और मर रहने के अतिरिक्त कोई अन्य बात नहीं, उसी प्रकार इनको जीवन का उदय और अस्त एक प्रकार है। इनके लिए दिन काम करने और रातें सो रहने के लिए बनी हैं। बस यही इनका जीवन है और यही इनके जीवन का ध्येय। और केवल मृत्यु ही इनका जीवन से छुटकारा दिला सकती है।

× × ×

एक और चीज़ हमारे मुहल्ले में बहुतायत से दीख पड़ती और वे थे कुत्ते, मरे हुए और भूख से सताये। बहुतों को खुजली थी और उनकी खाल में से मांस दिखाई पड़ता था। अपने बड़े-बड़े दाँतों को निकालकर वे अपने पुट्ठों को खुजाते थे या क़साई की दूकान के सामने एक हड्डी के पीछे एक दूसरे को नोचते और लहूलुहान कर देते। वे अपनी दुमें टाँगों के बीच दबाये नालियों को सूँघते दबे दबे आते और

कसाई की दूकान पर छीछड़ों पर झपटते, लेकिन जैसे ही उनको गोश्त का कोई टुकड़ा या हड्डी दिखाई देती तो चीलें ऊपर से झपट्टा मारतीं और उनके सामने से उसको उठा ले जातीं। फिर वे एक ऐसे आदमी की तरह जो कुछ लज्जित हो चुका हो, अपनी दुम दबाये हुए सड़क को सूँघा करते या अपनी झेंप आपस में लड़ाई करके और एक दूसरे का खून बहाकर निकालते।

× × ×

प्रातःकाल को बड़े सवेरे गरम चने बेचनेवाले की आवाज़ आती। वह अपनी झोली में गरम गरम, ताज़े, भुने हुए चने, गली-गली और कूचे-कूचे बेचता फिरता था। उसकी उम्र कोई चालीस साल के थी, लेकिन वह दुर्बल और सूखा हुआ था। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ अभी से देख पड़ती थीं। उसकी खसखसी दाढ़ी में सफ़ेद बाल आ गये थे। उसकी आँखें एक बीमार की आँखों की तरह थीं, जिनके नीचे काले गड्ढे पड़े हुए थे और जिनमें भूख और दीनता, रंज और [illegible] झलकते थे। उसके होंठों में बारीक लाल रगें दूर से दिखाई देती थीं, जो या तो नशे से या किसी के अनशन और बुखार के बाद पैदा हो जाती हैं। उसके सिर पर कपड़े की एक मैली टोपी [illegible] फटी हुई कमीज़ और उसकी ऊँची धोती से से उसकी [illegible] टाँगें दिखाई देती थीं।

बहुत दिन हुए [illegible] वह हमारे शहर में पास के किसी [illegible] आ गया था। वह गाँव की एक मस्जिद में [illegible] और दिन भर शहर की सड़कों पर मारा मारा फिरता। लेकिन [illegible] मिलना [illegible] में [illegible] और [illegible] नहीं थीं। इसलिए [illegible] को कोई काम न मिल सका। [illegible] आया [illegible] उसकी [illegible]

पर दया आ गई और वे उसे अपने घर ले गये। शेरा नेक और ईमानदार आदमी था। कुछ समय के बाद मीर साहब ने उसे पाँच रुपए दिये और कहा—इससे कोई काम शुरू कर देना, इसीलिए मैं ये रुपए देता हूँ। जब तेरे पास पैसे हों तब यह रकम वापस कर देना, नहीं तो कोई फिक्र की बात नहीं।

शेरा ने दाल, सेव और काबुली चनों का खोमचा लगाया। कुछ ही दिनों में शेरा को बहुत-से मुहल्लेवाले जान गये और उसका सौदा खूब बिकने लगा। साल-भर में ही उसने मीर साहब के रुपए लौटा दिये, अपने बीवी-बच्चों को बुला लिया और एक छोटे-से परिवार में रहने लगा। वह बहुत खुश था।

इसी समय के बीच में अब्दुर्रशीद को स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या के अपराध में फाँसी का हुक्म हो गया था। शहर के मुसलमानों में हलचल मच गई। फाँसी के दिन जेल के बाहर हज़ारों आदमियों का झुण्ड था। वे सब दरवाज़े को तोड़कर भीतर घुस जाना चाहते थे। लेकिन जब पुलिस ने अब्दुर्रशीद की लाश को लौटाने से मना कर दिया तब लोगों के जोश और गुस्से का कोई ठिकाना नहीं रहा। उनका बस नहीं चलता था कि किस तरह जेल को मिट्टी में मिला दें और उस गाज़ी की लाश को एक शहीद की तरह दफ़न करें।

उस दिन शेरा किसी काम से जामामस्जिद की ओर गया हुआ था। आसमान पर धूल छाई थी और सड़कें एक मौन शहर की भाँति सुनसान और उजाड़ मालूम हो रही थीं। पड़े हुए दोनों को चाटते हुए कई-एक कुत्ते उसे दिखाई दिये। एक नाली में एक मरा हुआ कबूतर पड़ा था। उसकी गर्दन मुड़ गई थी, उसकी कड़ी और नीली टाँगें ऊपर उठी हुई थीं; पर पानी में भीग गई थीं। उसकी एक आँख फटी मालूम हो रही थी। शेरा खड़ा होकर उसे देखने लगा। इतने में सामने सड़क के मोड़ से कलमें की ध्वनि ज़ोर-ज़ोर से आने लगी।

लोग एक अर्थी लिये आ रहे थे। ज्यों-ज्यों अर्थी शेरा के पास आती गई, भीड़ पीछे और भी ज़्यादा दीखने लग गई। यहाँ तक कि दूर-दूर तक आदमियों को छोड़कर कुछ दिखाई नहीं देता था। झुण्ड-का-झुण्ड अब्दुर्रशीद की अर्थी को ले भागा था। शेरा भी उसकी ओर बढ़ा और कन्धा देने में सहायक हो गया। इतने में सामने से पुलिस देख पड़ी। उन्होंने अर्थी को आगे जाने से रोक दिया। और कई एक आदमियों को गिरफ़्तार कर लिया। इन लोगों में शेरा भी था और उसको इस उपद्रव में भाग लेने के कारण दो साल की सज़ा हो गई।

अब वह कैद भुगत चुका था। लेकिन अब उसके गाहक उसकी आवाज़ को भूल-से गये थे। उसके पास इतने पैसे न थे कि वह दुबारा खोमचा लगा सके। कुछ लोगों ने चन्दा करके उसे दो रुपए दे दिये और उनसे शेरा ने फिर काम शुरू किया। अब वह चने बेचता फिरता था; लेकिन अब उसकी आवाज़ में वह करारापन न था और मुसीबत और दुःख उसकी हर पुकार में सुनाई देता था, तो भी बच्चे उसकी आवाज़ सुनकर चने लेने को दौड़ते थे और वह मुट्ठी से निकाल-निकाल कर चने तौलता और उनको देता था।

× × ×

एक और आदमी जो हमारे मुहल्ले में हर एक दिन रात को आया करता एक अन्धा फ़क़ीर था। उसका क़द बहुत छोटा था और उसकी चुगी दाढ़ी पर हमेशा नाक पड़ी रहती थी। उसके हाथ में एक टूटा हुआ बाँस का डण्डा रहता था, जिसे टेक-टेककर वह आगे बढ़ता था। वह बिलकुल तुच्छ और नाचीज़ मालूम होता था, जैसे कूड़े के ढेर पर मक्खियों का गोल या किसी मरी बिल्ली का ढाँचा। लेकिन उसकी आवाज़ में वह नाउम्मेदी और दर्द था, जो दुनिया की अस्थिरता को [illegible] कर देता है। आधी रात में उसकी आवाज़ ऐसी लगती है एक [illegible] की निशानी हो जैसे कहीं दूर से आती। फिर

आज तक इससे अधिक प्रभाव रखनेवाला स्वर नहीं सुना था और अभी तक वह मेरे कानों में गूँज रहा है। बहादुरशाह की गज़ल उसके मुँह से फिर पुराने शाही ज़माने की याद को नई कर देती थी, जब हिन्दुस्तान अपने नये बंधनों में नहीं जकड़ गया था। और उसकी आवाज़ से केवल बहादुरशाह के रक्त का ही अनुमान न होता था, वरन् हिन्दुस्तान की गुलामी का रोदन सुनने में आता था। दूर से उसकी आवाज़ आती थी—

ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है,
हम तो इस जीने के हाथों मर चले।

लेकिन मुहल्ले के शरीफ़ लोग उसको पैसा देने से घबराते थे, क्योंकि वह (कदाचित्) चरस पीता था, ऐसा समझा जाता था।

× × ×

एक रोज़ रात को मैं अपने कमरे में बैठा हुआ था। गर्मियों की रात और कोई दस बजे का समय था। ज़्यादातर दूकानें बन्द हो चुकी थीं। लेकिन क़बाबी और मिर्ज़ा की दूकानें अभी तक खुली हुई थीं। सड़क के दोनो ओर लोग अपनी-अपनी चारपाइयों पर लेटे हुए थे। कुछ तो सो गये थे और कुछ अभी तक बातें कर रहे थे। हवा में खुश्की और गर्मी थी और नालियों में से सड़ान फूट रही थी। मिर्ज़ा की दूकान के तख्ते के नीचे एक काली बिल्ली घात लगाये बैठी थी, जैसे किसी शिकार की फ़िक्र में हो। एक आदमी ने एक आने का दूध लेकर पिया और कुल्हड़ को जमीन पर डाल दिया। बिल्ली दवे पाँव तख्ते के नीचे से निकली और कुल्हड़ को चाटने लगी। उसी वक्त मेरी खिड़की के सामने से कल्लो गई और उसके पीछे मुन्नू क़दम बढ़ाता हुआ। कल्लो जवान थी। उसके चेहरे पर एक कान्ति और सुन्दरता थी। उसकी चाल में एक निर्भयता और अल्हड़पन था और उसकी देह जीवन के उभार से पुष्ट और लचीली थी। वह मुन्सिफ़ साहब के यहाँ नौकर थी। मुन्सिफ़ साहब की बीवी ने ही उसे लुटपन

से पाला था और अब वह विधवा हो गई थी। उसे विधवा हुए भी तीन वर्ष बीत गये थे; लेकिन मुहल्ले के जवानों की निगाह उस पर गाड़ी रहती थी। जब वह गली के मोड़ पर पहुँचा तब मुन्नू ने उसका हाथ पकड़ लिया। कल्लो झुँझलाकर चिल्लाई—हट, दूर हो मुए। मेरा हाथ छोड़।—पास के एक मकान की छत पर दो बिल्लियों के लड़ने की आवाज आई। उसी वक्त कल्लो ने जोर से झटका दिया और अपना हाथ छुड़ा लिया—झाड़ू पिटे, जवाना मरे। समझता है, मुझमें दम नहीं। इतना पिटवाऊँगी कि उम्र भर याद करेगा।

मिर्जा जो एक खरीददार को दूध देने के बाद तनिक देर के लिए घर में चला गया था, उसी वक्त लौट आया और कल्लो का अन्तिम वाक्य उसे सुनाई दिया। वह बोला—क्या बात है कल्लो? क्या हुआ लेकिन कल्लो बिना पीछे मुड़े तेजी से गली में चली गई।

अज़ीज़ [illegible] जो अपनी दूकान के सामने सो रहा था, शोर से उठ गया। वह मुन्नू को खड़ा देखकर पूछने लगा—अबे मुन्नू, क्या बात है?

मुन्नू निराशा और क्रोध से भरा खड़ा था। उसका मुँह फूलकर कुप्पा-सा मालूम हो रहा था। आँखें साँप की आँखों की तरह जहरीली और तेज हो गई थीं। [illegible] पर बिल्ली की आँखें [illegible] चमकती हुई दिखाई दीं, लेकिन फिर छिप गईं। मुन्नू ने कुछ [illegible] आवाज में जवाब दिया—कुछ नहीं यार, कल्लो थी।

[illegible] बिल्लियाँ अभी तक लड़ रही थीं। वे एक भयानक ढंग से गुर्राने के बाद [illegible] थीं। यह मालूम होता था कि एक दूसरे को खा जायँगी। फिर 'म्याऊँ-म्याऊँ' करके एक भाग निकली और [illegible] हो गया।

[illegible] ने मुन्नू को अपने [illegible] पर [illegible] लिया और [illegible]; [illegible]

कमीज़ की जेब में से चाँदी का सिगरेट-केस निकाला और अज़ीज़ से कहा—लो मियाँ, तुम भी क्या याद करोगे, मैं तुम्हें बड़ा बढ़िया सिगरेट पिलाता हूँ।—और एक सिगरेट निकालकर अज़ीज़ को दे दिया।

'अरे मियाँ, अबके किसका मार लाया?'

'मियाँ, यारों के पास किस चीज़ की कमी है। जिसको न दे मौला उसको दे आसफ़ुद्दौला। अगर अल्लामियाँ के भरोसे पर रहते तो काम चला लिया था।'

'मियाँ होश की लो, खुदा से डरो। दोज़ख में जलोगे, तोबा करो।'

'जा यार, यह भी क्या गधों की बातें करता है। मैं तो यह जानता हूँ, 'खाओ पीओ और मजे करो।' इससे ज़्यादा उस्ताद ने सिखाया नहीं। मैं तो मूँछों को ताव देता हूँ और पड़े-पड़े ऐंठता हूँ। कहाँ की दोज़ख की लगाई। अगर हुई भी तो भुगत लेंगे। अब कहाँ का रोग पाला?'

'बस यार बस, क्यों ख़राब बातें मुँह से निकाल रिया है। सब आगे आ जाता है। सारी अकड़ धरी रह जायगी।'

'अच्छा यार ले, तू इस तरह की बातें करने लगा। मैं अब चल दिया।'

'ज़रा सुन तो यार, एक बात मुझे दिनों से हरियान कर रही है। क़सम खा, बता देगा।'

'अच्छा जा, तू भी क्या याद रखेगा। अल्ला क़सम बता दूँगा।'

'यह बता, आख़िर तू चोरी क्यों करता है?'

'भई, इसकी नहीं बदी थी।'

'देख, क़ौल दे चुका है।'

'अच्छा जा, तू जीता, मैं हारा। जो सच पूछे तो बात यह है कि मैं कभी चोरी न करता। तू जानता है, मेरे रिश्तेदार काफ़ी अमीर लोग हैं।'

'जदी तो मैं और भी हरियान हो रिया हूँ !'

'मेरा एक भाई लगता था। यह कोई दस बरस की बात है। मेरी उससे कुछ चल गई थी। हम दोनो साथ रहते थे। उसने मेरी मास्टर से शिकायत कर दी और बेतें लगवाईं। मेरे ऊपर भूत सवार हो गया। मैंने कहा—साले, अगर बदला न लिया तो मूँछें मुड़वा दूँ। एक रोज़ दाँव पाकर मैंने साले का बस्ता चुरा लिया। उसके अन्दर बड़ी बढ़िया चीज़ें थीं। उससे शुरुआत हो गई। फिर एक बार मुझे एक मामू का सिगरेट-केस पसन्द आ गया। मैं उससे माँग तो सकता न था; लेकिन मैंने पार कर दिया। उसके बाद मैंने सोचा कि इन हरामज़ादों के पास रुपए भी हैं और अच्छी चीज़ें भी। क्यों न उड़ा लिया करो।'

'लेकिन अगर कभी पकड़े गये तो ?'

'फिर तूने वही फ़िज़ूल की बातें शुरू कर दीं। अच्छा मैं अब चला, नहीं तो घर में तू तू मैं-मैं होगी।'

यह कहकर वह उठा और अज़ीज़ की कमर पर ज़ोर से धप्पड़ मारकर चला गया।

× × ×

[illegible] मुहल्ले की मस्जिद में [illegible] अज़ान दिया करते थे। वे [illegible] और मज़बूत थे। रंग बिल्कुल काला था। दाढ़ी [illegible], लेकिन कनपटी और गर्दन के [illegible]। उनके माथे पर ठीक बीच में एक [illegible], जिसका रंग [illegible] था और [illegible] था। वे [illegible] के सामने से [illegible] हुए जाया करते थे। वे [illegible] की टोपी [illegible] और गाढ़े का कुर्ता पहने रहते और उनके [illegible] हुआ [illegible], गली के लोग [illegible]। उनकी आवाज़

दूर-दूर पहचानी जाती थी, और कई मुहल्लों तक पहुँचती थी। अज़ान से पहले उनकी खकार भी बहुत दूर से सुनाई देती थी। पहले-पहल तो उनकी आवाज़ से उस प्रकार का संकेत होता था जो मुसलमानों को नमाज़ को बुलाती है, फिर जब अन्त होने को आता तब आवाज़ की झङ्कार में कमी होती और उनके शब्द बल खाते हुए एक सन्नाटा और शान्ति पैदा करते हुए आकाश में खो जाते। लोग इसानुर्रहमान को हज़रत बुलाल हबशी कहते थे और इस तरह की बहुत-सी बातें दोनो में ही एक-सी पाई जाती थीं। उनकी गर्वीली आवाज़ें और उनका काला रङ्ग।

एक बार मैं अपने मकान की छत पर अकेला बैठा था। आसमान पर हलके-हलके बादल बिछे हुए थे और सूरज की रोशनी उन पर पीछे से पड़ रही थी। उनमें हलकी-सी फीकी-फीकी रोशनी देख पड़ती, क्योंकि वातावरण साफ़ न था और शहर की गर्द और दूर की मिलों का धुआँ हवा में फैला हुआ था। शहर का हल्ला-गुल्ला मक्खियों के गुनगुनाने की तरह सुनाई दे रहा था। और सारे आकाश-मण्डल में एक हृदय को टुकड़े-टुकड़े करनेवाली निराशा थी—वह दुःख की अवस्था जो हमारे शहरों की एक खास पहचान होती है और जिसमें घृणास्पद जीवन की असहाय अवस्था का भान होता है। धूलि से मैले और फीके बादलों में एक जगली कबूतर उड़ाता हुआ गया और उनके धूमिल रङ्गों में छिप गया। दूर से मिलों की सीटियों और रेल के इञ्जनों की आवाज़ें आ रही थीं। शहर की ऊँची गमटियों और मीनारों ने कबूतर उड़ते थे या मँडरा-मँडराकर उन पर बैठ जाते थे। दूर-दूर जिधर दृष्टि जाती थी, गन्दी, विकृत, मैली-कुचैली इमारतें और उनकी छतें दिखाई देती थीं। दूर दूर जिधर आदमी देख सकता था, जीवन में उदासीनता और निरुद्यमता का भान होता था। कहीं कहीं कोई दुमंज़िला या तिमंज़िला मकान बन रहा था और उसकी पाड़ें आसमान

गूँज रही थी, लेकिन यही सन्देह होता था कि केवल मौन का आतङ्क कानों पर छाया हुआ है।

× × ×

एक रात को मिर्ज़ा की दूकान पर चार आदमी बैठे हुए बातें कर रहे थे। उनमें से एक तो अज़ीज़ था, एक कबाबी और एक-आध और इकट्ठे हो गये थे। उनके सामने हुक्का रखा था और वे बारी-बारी से घूँट खींच रहे थे। उनमें से एक कह रहा था—मैं तो यार, हर एक चीज में विसकी शान देख रिया हूँ।

इस पर मेरे कान खड़े हुए और मैं ध्यान से सुनने लगा। इतने में एक गाहक आया और उसने मिर्ज़ा से एक आने का दूध माँगा और एक ओर खड़ा हो गया। मिर्ज़ा ने एक कुल्हड़ उठाया और दूध निकालने के लिए लुटिया कढ़ाई की ओर बढ़ाई। उस आवाज़ ने अपनी बात उसी तरह कहना शुरू किया—परले दिन में चाँदनी चौक में से जा रिया था कि सामने से एक बछिया आ री थी, उसी जगा एक बच्चा पड़ा वा था। गाय बच्चे के पास आन के रुक गई। मैंने सोचा कि देखो अब क्या करती है। विरने में साब, विस बछिया ने अपने चारों पैर जोड़कर कुलाँच मारी कि बच्चे को साफ लाँग गई। मुझको तो उस जानवर की अक्ल में विकसी शान नजर आ गई।

मिर्ज़ा का एक हाथ कढ़ाई के पास था, दूसरे में कुल्हड़, और वह बोलनेवाले की ओर घूर रहा था।

अज़ीज बोला—वाह क्या विसकी शान है!—मिर्ज़ा ने लुटिया में दूध लिया और उसको उछालने लगा। उतने में एक दूसरा शख्स बोला—हाँ, मियाँ उसकी शान का क्या पूँछ रिये हो। एक मर्तबा हज़्रत सुलेमान को हुक्म मिला कि एक महल बनाओ, तो बस साहब उन्होंने तैयारियाँ शुरू कर दीं। जिन्नातों ने आनन फानन में बड़े-बड़े पत्थर और सिल्ले ला-लाकर जमा कर दिये और मदत लग गई। तुम

जानते ही हो कि जिन्नातों का काम कितना फुर्ती का होता है। आज इतना, कल कितना, थोड़े ही दिन में महल आसमान से बातें करने लग गिया। हज़रत सुलेमान रोज उस जगा जाके देखा करते कि कोई काम में सुस्ती तो नहीं कर रिया है। तो बस, साहब एक दिन महल खड़ा हो गिया। अब सिर्फ उसके अन्दर की कतलों और फत्तर साफ करने रह गये। दूसरे रोज फिर हज़रत सुलेमान अपनी लकड़ी टेककर खड़े हो गए और कूड़े करकट को बाहर फेंकने का हुक्म दे दिया। लेकिन इतने में वहाँ से कुछ और ही हुक्म आ चुका था। अब देखिये उसकी शान, कि यहाँ तो महल की सफ़ाई हो रही है और वहाँ उस लकड़ी में घुन लगना शुरू हो गया। लेकिन वे डटे खड़े रहे। यहाँ तक कि घुन लगते-लगते मूँठ तक पहुँच गया, लेकिन उनको ज़रा भी ख़बर नहीं हुई और लकड़ी राख की तरियां झड़ गई और उनका खुद का दम निकल गया। लेकिन मैं तो इस बात पर हैरान हो रिया हूँ कि उन कतलों और फत्तरों को कौन साफ़ करेगा।

अतीक के हाथ में हुक्के की नली उसके मुँह के बराबर रखी हुई थी और वह बोलने वाले की तरफ़ घूर रहा था। मिर्ज़ा का एक हाथ जिसमें छुटिया थी, ऊपर था और आबखोरेवाला नीचे, और वह किस्से में बेसुध लगा हुआ था। मैंने ज़ोर से एक क़हक़हा लगाया, लेकिन फिर सोच में खो गया कि भाई आखिर इन 'क़तलों और फ़त्तरों' को कौन साफ़ करेगा!

हवा का एक झोंका ज़ोर से आया और मिट्टी के तेल का लैम्प बुझ गया। सड़क पर अँधेरा था। सभी बच्चे लोग मिर्ज़ा की दुकान से उठकर चलने लगे और मैं भी घर के अन्दर चला गया।

अली अब्बास हुसैनी

श्री अली अब्बास हुसैनी के कहानी-लेखन की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य उनकी दु:खानुभूति है। जैसा उनका हृदय है, वैसा ही वे दूसरों का देखना चाहते हैं। और इस लक्ष्य की साधना के लिए वे सदैव मनुष्य-स्वभाव के कमजोर और पीडित अंग को ही पकड़ते हैं। मानव की स्वभावगत कमजोरियों से वाकिफ़ हैं और इसलिए सख्त दिलों को भी दर्दमन्द बनाना चाहते हैं।

हुसैनी साहब की कहानियों के कथानक प्राय: सादे होते हैं और उनमें केवल किसी एक घटना या भावना पर अधिक ज़ोर दिया जाता है, और वह कहानियाँ जिनकी नींव केवल एक भावना पर है, उनकी सुन्दरतम रचनाएँ हैं। 'एकान्त का साथी' इस प्रकार की कहानियों में बहुत प्रसिद्ध है। और उर्दू में ऐसी कहानियाँ बहुत कम लिखी जाती हैं। इस प्रकार की कहानियों का प्रभाव मन पर बहुत दिनों के लिए कायम रहता है और उनकी चोट आदमी में तड़प पैदा करती है।

'एकान्त का साथी' में वे सभी गुण मौजूद हैं, जिनका ऊपर जिक्र किया गया है। यह एक अमर कहानी है। भाषा और वर्णन की दृष्टि से भी हुसैनी साहब कमाल करते हैं। उनका ढंग बहुत ही आकर्षक और प्रभावोत्पादक है।

एकान्त का साथी

एकान्त का साथी

कुर्बान मियाँ को कोई साथी न मिला। बचपन यों ही गुज़र गया, जवानी यों ही बीती और अब बुढ़ापे में क्या धरा था, जो कोई इन्हें पूछता। कभी कोई इनकी ओर न खिंचा, बल्कि सब इनसे खिंचे रहे। कारण भी प्रकट था। प्रेम अथवा उसका आकर्षण कितनी भी आध्यात्मिक वस्तु क्यों न हो, पर आधार उसका भौतिकता पर ही है ; अर्थात् धन-सम्पत्ति तथा सम्पन्नता पर ! बेचारे कुर्बान मियाँ के यहाँ इनमें से कोई चीज़ न थी। न तो श्वेत और सुनहरी सिक्के—जिनकी चमक आँखों में वह चकचौंध पैदा कर देती है कि काली सूरत भी खूबसूरत दिखाई देने लगती है और न वह पदवी तथा मान-प्रतिष्ठा कि जिससे विरोधी के हौसले पस्त हो जाते हैं। दुर्बल स्वभाववाले लोग जिनसे डरते हैं, उनकी ही पूजा करते हैं और सिर झुकते-झुकते दिल भी झुक जाता है : पर कुर्बान मियाँ के पास इतनी मान-प्रतिष्ठा कहाँ ? अब रहा आकर्षण

का सबसे बड़ा साधन—सुन्दरता ! जिसके पास यह दौलत हो वह क्या कुछ नहीं कर सकता । मनुष्य से देवता बन सकता है, इस जगत से अपनी पूजा करवा सकता है ; पर कुर्बान मियाँ के साथ विधाता ने इस मामले में भी कृपणता से काम लिया था—लम्बा कद, दुबला-पतला शरीर, गर्दन और भुजाएँ झुकी हुई, गाल पिचके, और उन पर बकरों की सी दाढ़ी ! युवावस्था में हो सकता था कि साहस से काम लेते, तो इन्हें अपने ही जैसे 'गुणों' की मालिक कोई बेगम साहबा मिल जातीं ; पर विधाता ने जहाँ ऐसी सूरत दी वहाँ उन्हें इतना दुर्बल हृदय दिया कि अपनी कुरूपता को वे क्षण-भर के लिए भी नहीं भुला सके ।

यही कारण था कि आरम्भ ही से एकान्त उन्हें पसन्द रहा । बाहर निकलने, समाज में आने से वे सदय घबराते थे । छोटे-बड़े सब लोगों को उनकी इस दुर्बलता का ज्ञान था, इसलिए छोटे-बड़े सब उनका उपहास उड़ाने में आनन्द पाते थे । जहाँ वह नजर आ जाते, उन पर फबतियाँ कसी जाने लगतीं । कुर्बान मियाँ कभी गुस्से होते, कभी रो देते । लौंडे आँसू देखकर तालियाँ पीटने लगते और जब वह क्रोधित होकर गालियाँ देते तो बड़े बूढ़े उनसे लड़ने और मारने की धमकी देते । ऐसी निर्मम दुनिया में, जहाँ सब ही उपहास उड़ाने, तंग करने को तैयार हों, एकान्त क्यों न भाए । इसी से गुजर जाते और वह अपनी कोठरी से न निकलते थे । इसी कोने में उन्हें आराम मिलता था । कोठरी में उनकी नानी रहती थीं । जब तक वह बेचारी जीवित रहीं, कुर्बान मियाँ की देख भाल करती रहीं । उन्हीं के कारण उनको कुछ सीना पिरोना आ गया । दिन-भर में एक कुर्ता, एक पायजामा और एक [illegible] सी लेते । दो चार आने मिल जाते, [illegible] गुजर हो रहा [illegible] । [illegible] कोई काम न मिलता और पेट की [illegible] में मक्खी की [illegible], रोते, गुस्सा होते [illegible] । [illegible]

को उनके पीले चेहरे, सजल आँखें और काँपते हुए शरीर को देखकर दया आ ही जाती। कोई कुछ सीने को दे देता, कोई खाना खिला देता, कोई दो-चार पैसों से सहायता करता।

इसी प्रकार युवावस्था आरम्भ हुई और खतम हो गई। अब उम्र के अन्तिम दिन थे। झोंपड़ी का फूस और बाँस कब का वर्षा की भेंट हो चुका था। दो चार वर्ष तो किसी प्रकार लीप-पोतकर गुज़ारे; पर आखिर कब तक। एक बरसात में छत बह गई। कच्ची दीवारें दिन की धूप और रात की ओस से बचाने से रहीं। बे-घर, बे-दर हो गये। सिलाई का काम भी अब छूट चुका था। न तो सूई हाथ में थमती थी, न तागा नाके में पड़ता था। मज़दूरी-मेहनत करना उनके लिए युवावस्था में असम्भव था, फिर अब तो बाल श्वेत हो चुके थे, शरीर पर झुर्रियाँ पड़ चुकी थीं, और आँखों की ज्योति ने प्रायः जवाब दे दिया था।

इसीलिए जब शरीर के साथ झोंपड़े ने भी जवाब दे दिया तो कुर्बान मियाँ ने हकीम साहब के यहाँ पनाह ली। और यह आश्रय भी हकीम साहब ने नहीं, उनकी बीवी ने दिया। हकीम साहब बेचारे तो राजपूताना की एक रियासत में काम करते थे। उनको कुर्बान मियाँ की क्या खबर। उन पर तो मात्र रुपया कमाकर घर भेजने का उत्तरदायित्व था। इन्हें मटकों में बन्द करने, धरती में गाड़ने अथवा सूद पर चलाने के दायी वे न थे। यह सब काम उनकी बेगम साहबा भली-भाँति पूरा कर देती थीं। इन्हीं श्रीमतीजी ने कुर्बान मियाँ को घर में आश्रय दिया। और मकान के मर्दाना हिस्से में रहने को कहा। पर यह कृपा कुर्बान मियाँ पर दया करके उन्होंने नहीं की। कहा तो पड़ोसिनों से यही कि बीवी, मुझसे इस मुए की हालत नहीं देखी जाती; पर वास्तव में उन्होंने किया यह कि रात को बाहर सोनेवाला आदमी हटा दिया। कुर्बान मियाँ यदि बाहर रहेंगे तो मर्दाने हिस्से में झाड़-

देंगे, दिन-भर बाजार का काम करेंगे, सौदा-सुल्फ लायेंगे, सन्ध्या को दिया-बत्ती जलायेंगे और रात को चौकीदारी करेंगे—अर्थात् वे सब काम करेंगे जो एक दस रुपया माहिक पानेवाला चौकीदार इस हालत में करता जब कि दूसरा नौकर दिन के काम के लिए अलग होता। और इस पर एहसान का बोझ उनके कन्धे पर। कहीं ज़रा काम में ग़लती की, तो कृतघ्नता की छाप उनके माथे पर सदैव के लिए लगा दी जायगी।

कुर्बान मियाँ यह सब समझते थे; पर विवश थे। एक ओर बुढ़ापा था, दूसरी ओर घर-बार का अभाव। उन्हें इतना आश्रय भी मिल गया तो समझे कि स्वर्ग हाथ आ गया। जल्दी-जल्दी अपनी कोठरी के खंडहर से एक ढाँचा-सी चारपाई, एक पुराना घड़ा, एक मिट्टी का लोटा, एक सुराखदार तवा, और एक पचकी हुई अलमोनियम की पतीली उठा लाये। यही उनकी सारी उम्र की कमाई थी, यही उनका जमा-जत्था! उन टेन्छुत की दीवारों के पास कुर्बान मियाँ की भाँति उनके लिए भी कोई स्थान न था।

× × ×

इस नई जगह में आने पर कुर्बान मियाँ ने बेहद उदासी और एकान्त महसूस किया। अपने खंडहर की टूटी हुई दीवारें और दरवाज़े [illegible] की हैसियत रखते थे। उनकी गोद में [illegible] की किल-कारियाँ भरीं, पले, बढ़े, जवान और बूढ़े हुए। उनके सामने ही [illegible] [illegible] और [illegible] भी। उन पर सिर रखकर प्रातः [illegible] के [illegible] भी थे और दिन के एकान्त में गुनगुनाये भी थे। [illegible] के दिल में [illegible] [illegible] इन्होंने [illegible] किया, जब उनका [illegible] हुआ था और [illegible] [illegible] कुर्बान मियाँ

उनसे अपने दिल का हाल कहते और उनसे सान्त्वना भी पाते।

हकीम साहब के मकान में वह बात कहाँ! वह काटे खाता था। उसकी उज्ज्वल दीवारें, उसकी नई-नई छतें, सब-की-सब बड़ी बड़ी आँखें निकालकर घूरतीं। मानों कह रही हों—अल्लाह, तेरी यह स्पर्धा कि तू हमारे दरम्यान रहे। नहीं जानता, हम हकीम साहब की पत्नी के मकान की दीवारें हैं। तेरे मैले-कुचैले जर्जर कपड़े हमारी सुन्दरता में कमी करते हैं। तुझ से हमें दुर्गन्ध आती है। दूर हो, दूर। अभी निकल जा, हमारे मध्य तेरे लिए जगह नहीं है।

कुर्बान मियाँ अपनी टूटी झोंपड़ी की दीवारों से भी बातें कर चुके थे। हकीम साहब की दीवारों की भाषा भी वह भली-भाँति समझते थे, उनकी भृकुटी को वह पहचानते थे। इसीलिए बाहर के हिस्से का सब से तारीक कोना उन्होंने अपने लिए चुना।

तभी जीवन में पहली बार एक साथी की उत्कट अभिलाषा उनके हृदय में पैदा हो उठी। कोई, जो इस नये स्थान में उनका साथी हो। जब हकीम साहब की बेगम की गालियों से उनका हृदय छलनी हो जाय तो उस पर मरहम रखे, जब बाज़ार से लड़कों के हाथों तंग होकर थके-हारे वे आयें तो उन्हें सान्त्वना दे, कोई ऐसा साथी, जिससे अपना दुःख-दर्द कह सकें। रह-रहकर दिल में हूक-सी उठती, जी चाहता कि या तो कोई हमदर्द मिल जाय या कपड़े फाड़कर चीखते-पीटते कहीं ऐसी जगह निकल जायँ, जहाँ न हकीमजी की बेगम हो और न ये शैतान शरारती लड़के!

यह हालत उनकी इस हद तक बढ़ गई कि राह चलते भी वह इधर-उधर इस तरह देखते जाते जैसे कोई खोई हुई वस्तु ढूँढ रहे हों। बाज़ार के लौंडों ने भी उनके इस नये स्वभाव को ताड़ लिया। एक दिन बाज़ार में एक बदमाश लड़का उनकी टोपी उचककर ले भागा। जब वह झल्लाकर उसके पीछे लपके तो दूर जाकर चीखकर बोला—

होकर ये उन्हें मारने दौड़ते या गालियाँ देते तो सब खूब कहकहे लगाते। बच्चों के इस मजाक़ में बड़े भी आ शामिल होते—उस सब निठुर जन-समूह में एक भी ऐसा न था जो उनके हृदय की व्यथा समझ पाता।

इस बार-बार की छेड़ ने कुर्बान मियाँ की व्यथा को और भी तीव्र, और भी गहरा कर दिया। जहाँ पहले कसक थी, अब घाव हो गया, और हर वक्त ठेस लगने से अन्त में नासूर पड़ गया। उनकी दृष्टि जिस ओर जाती एकान्त की डरावनी सूरत दिखाई देती। दिन हो कि रात, मकान में हो कि बाजार में, काम कर रहे हों या बेकार बैठे हों, एक असीम सूनापन उन्हें अपने चारो ओर छाया प्रतीत होता और इसके साथ ही, किसी साथी की, किसी हमदर्द की इच्छा प्रबलतर होकर उनके हृदय में जाग उठती। तभी एक दिन जब कि हकीमजी की बेगम काम लेते लेते थककर सो गई थीं, कुर्बान मियाँ अपने बचपन के मित्र अपनी नानी के उस टूटे-फूटे खंडहर में पहुँचे। केवल चार-दीवारी खड़ी थी, और किवाड़ों के बिना दरवाजे की चौखट जैसे आँखें फाड़े उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। क्षणिक आवेग के अधीन वह उस चौखट से लिपट गये, फिर अन्दर दाखिल हुए। दीवार वर्षा के कारण फट-फटकर गिर रही थी और सील के कारण लूनी भी लग गई थी, मानो मौन भाषा में कह रही थी—देखो, तुमने यद्यपि साथ छोड़ दिया ; पर मैं अब तक निमक खाया पूरा कर रही हूँ।—इस मौन भाषा में की गई शिकायत को कुर्बान मियाँ भली-भाँति समझते थे। सिर झुकाकर शरमाये से खड़े रहे कि अचानक उनकी दृष्टि एक कोने की ओर गई—देखा तो एक कुत्ते का पिल्ला, दुर्बल, कमजोर, घायल-सा पड़ा है और इन्हें डर और आश्चर्य से देख रहा है। मानो आँखें उसकी कहती थीं कि मनुष्य के हाथों में भी उसी तरह सताया हुआ हूँ जैसे कि तुम। खुदा है, फिर [illegible]

बरबस करते थे, अब भाग-भागकर करते। अब जैसे वे साठ वर्ष के बूढ़े न होकर बीस-बाईस वर्ष के जवान बन गये थे। बाज़ार से जब काम करके पलटते तो उनके चेहरे पर वही उल्लास, वही हर्ष होता, जो दिन-भर जी तोड़कर मेहनत करके मज़दूरी पानेवाले उस मज़दूर के चेहरे पर होता है, जिसे मालूम हो कि घर में उसके बीवी-बच्चे उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कुत्ता भी उनके आते ही उछलता, कूदता, इस तरह टाँगों में फंदे डालता, जिस प्रकार छोटे बच्चे बाप की टाँगों में डालते हैं। कभी हाथ चाटता, कभी पाँवों में लोटता, कभी दूर तक भागकर चला जाता और फिर बिल्ली की भाँति दबे पाँव आता और उनके पास पहुँचते ही अचानक उछलकर कलाबाज़ी खाता और उनकी टाँगों फँसकर गिर पड़ता। क़ुर्बान मियाँ भी थोड़ी देर तक मुस्कराते हुए उसकी ये हरकतें देखते रहते, फिर खाट की पाँयती की ओर संकेत करके कहते—अच्छा, ले बस, अब जाओ और अपनी जगह जाकर बैठो। थोड़ी देर तक वह बिल्कुल ज़िद्दी बच्चों की भाँति मचलता और इस तरह खेलता रहता जैसे कुछ सुना ही नहीं; पर दोबारा आज्ञा पाते ही गम्भीरता से खड़ा हो जाता और उनसे पृथक् होकर पीठ हिलाकर शरीर की गर्द गिराता और फिर धीरे-धीरे अपने स्थान पर जाता और धरती को अपनी दुम से साफ़ करके चुपचाप बैठ जाता।

लोगों ने जब देखा कि क़ुर्बान मियाँ तो अब बिल्कुल बदल गये हैं और उदास रहने के बदले सारा-सारा दिन प्रसन्न रहने लगे हैं तो उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। बड़े-बूढ़ों ने तो मात्र उनसे पूछकर छोड़ दिया कि क्यों भई, आजकल क्या बात है जो इतने उल्लसित रहने लगे हो? पर शरारती लड़के कब इस तरह माननेवाले थे। उनके विनोद का सामान उनके हाथ से छिना जा रहा था, फिर वे

गालियाँ देते थे, न मारने को दौड़ते थे। उन्हें चिन्ता हुई कि आख़िर मामला क्या है। टोह लगाने लगे।

एक दिन जब गाँव के बाज़ार से मियाँ कुर्बान कोई सौदा लेकर चले, तो एक शरीर लड़का उनके पीछे हो लिया और उसने उनके इस उल्लास का रहस्य मालूम कर लिया। उसी शाम ही शैतान के इन प्रतिनिधियों की बैठक हुई और प्रस्ताव किया कि कुर्बान मियाँ को तंग करने के लिए उनके कुत्ते का ख़ात्मा किया जाय। दूसरे ही दिन आतशबाज़ को आठ आने दिये गये और उससे कहा गया कि वह [illegible] बना दे और तत्काल बना दे। किसी दूसरे का काम होता तो एक दो दिन टल भी जाता, पर यहाँ शैतानों का काम था और वह भी तब, जब सबने चन्दा करके आठ आने के पैसे उसे पहले दे दिये थे। आतशबाज़ ने उसी दिन काम करके अपना गला छुड़ाया। दूसरे ही लड़कों ने फिर कमेटी बुलाई। वालंटियर चुने गये, नक्शा तैयार हो गया। फूलों के हार बनाये गये और चुन चुन के हर एक को उसका काम बतला दिया गया।

दूसरे दिन प्रातः होते ही लड़कों की सी० आई० डी० ने काम शुरू कर दिया। कुर्बान मियाँ [illegible] के लिए दरवाज़े में टकटकी [illegible] और दिन ढलना आरम्भ [illegible] मकान के बाहर आकर [illegible] [illegible] मियाँ कुर्बान पर [illegible] [illegible]

कुर्बान मियाँ सचमुच सो रहे थे, पर मामा ने जो बेगम का गुस्सा उन पर उतारते हुए डाँटकर हुक्म सुनाया तो आँखें मलते हुए उठे और घबराये हुए चमार-टोले की ओर चले।

कुत्ते ने जो इन्हें घर से बाहर निकलते देखा तो अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया, पीठ हिलाकर शरीर की मिट्टी गिराई और खुशी से भूँकता तथा दुम हिलाता हुआ साथ हो लिया। उन्होंने पलटकर सिर पर हाथ फेरा, और जैसे पितृ-तुल्य प्रेम से कहा—बेटा, तुम यहीं बैठो, गाँव के कुत्ते लौंडों की भाँति बड़े बदमाश हैं, पीछे पड़ जायँगे तो जान बचानी मुश्किल हो जायगी...फिर चले आ रहे हो बेटा! कहना नहीं मानते, बस, जाओ वहीं बैठो।

यह कहते-कहते वह मकान से बाहर हो गये। कुत्ता निराश होकर सदैव की भाँति अपनी जगह वापस आ गया, देर तक अपने स्वामी की खाट को ध्यान से देखता रहा, शायद सोच रहा था कि मक्खी भी यदि उड़कर उस पर आ बैठे तो उसे खा डाले। फिर चुपका अपनी जगह आकर दोनो अगले पंजों पर सिर रखकर बैठ गया।

लौंडों ने भी कुर्बान मियाँ को बाहर जाते देख लिया था। जब यह निश्चय हो गया कि अब वे काफ़ी दूर निकल गये हैं तो धीरे-धीरे मकान में प्रवेश करने लगे। जो सबसे आगे था, उसके हाथ में एक रिकाबी में चावल थे, उस पर दाल पड़ी थी, एक बोटी गोश्त की भी लाल-लाल खूब भुनी हुई रखी थी। कुत्ते के स्वभाव ने तो आगन्तुकों को देखकर उसे भूँकने के लिए कहा; पर बोटी की सुगंधि ने ज़बान बन्द कर दी। जब बोटी मुँह में पहुँच गई और फ़र्श पर पड़े हुए चावलों पर गर्दन झुक गई तो दो तीन बड़े-बड़े लड़के पास आ गये और उन्होंने धीरे धीरे उसकी पीठ सहलानी शुरू की। गरीब जानवर मित्र समझकर दुम हिलाने लगा, पिछले कष्ट भूल गया, कुर्बान मियाँ

घिसकता-घिसकता वह अपने स्वामी के पास आया, और पास आया। करुणा-भरी आँखों से उसने उनकी ओर देखा। मुँह का पसीना चाटा और शिथिल होकर उनकी छाती पर अपना सिर रख दिया। कुर्बान मियाँ ने आँख खोली और फिर कुछ बेहोशी की सी दशा में अपना जला हुआ हाथ अत्यन्त कठिनाई से उठाया और अपने साथी को अपने सीने के साथ जोर से भींच लिया। इसके साथ उनकी सरल आत्मा जीवन का कलेवर छोड़ गई।

× × ×

जब हकीम साहब की बेगम साहबा की गालियों ने लड़कों को भगा दिया और कुर्बान मियाँ को अन्तिम मंजिल पर पहुँचाने के लिए लोग जमा हुए तो बेगम साहबा ने ताकीद कर दी कि कुर्बान मियाँ का मुँह पावभर बेसन से सात बार धोया जाय।

जाकिर हुसैन

डाक्टर जाकिर हुसैन साहब, एम० ए०, पी० एच० डी०, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली (मुस्लिम राष्ट्रीय विद्यालय) के प्रधान हैं। आप अर्थशास्त्र के आचार्य हैं और आपने इस विषय पर महत्त्वपूर्ण लेक्चर हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद मे दिया था, जो अब पुस्तक-रूप में प्रकाशित हो गया है। इधर महात्मा गांधी की जो वर्धा-शिक्षा-योजना है, उसमें जाकिर हुसैन साहब का बहुत बड़ा हाथ है। यह शिक्षा-योजना आपके शिशु-शिक्षा-ज्ञान का अच्छा नमूना है। भाषा आपकी अत्यन्त सरल होती है और आप गहन विषयों को भी इतना रोचक बना सकते हैं कि बालक भी उसका आनन्द उठा सकते हैं। गम्भीर विचारक होते हुए भी, इसीलिए, आपने बच्चों के लिए कुछ अमूल्य सेवा की है। एक सेवक साहित्यिक के नाते प्रत्येक उर्दू-दाँ के आप आदर और अभिनन्दन के पात्र हैं।

'अब्बूख़ाँ की बकरी' आपकी एक बड़ी ही सुन्दर एवं रोचक कहानी है। यह अपने ढंग की अकेली कहानी है और कहानियत की दृष्टि से भी बहुत ऊँची उठी है।

अब्बूख़ाँ की बकरी

अब्बूख़ाँ की बकरी

हिमालय पहाड़ का नाम तो तुमने सुना ही होगा। इससे बड़ा पहाड़ दुनिया में कोई नहीं है। हजारों मील चला गया है और ऊँचा इतना है कि अभी तक उसकी ऊँची चोटियों पर कोई आदमी नहीं पहुँच पाया। इस पहाड़ के अन्दर बहुत सी बस्तियाँ भी हैं। ऐसी ही एक बस्ती अलमोड़ा भी है।

अलमोड़ा में एक बड़े मियाँ रहते थे, उनका नाम था अब्बूख़ाँ। उन्हें बकरियाँ पालने का बहुत शौक था। अकेले आदमी थे, बस एक दो बकरियाँ रखते, दिन भर उन्हें चराते फिरते, उनके अजीब-अजीब नाम रखते। किसी का कल्लू, किसी का मुँगिया, किसी का गुजरी किसी का हुकमा। इनसे न जाने क्या-क्या बातें करते रहते और शाम के वक्त बकरियों को लाकर घर में बाँध देते। अलमोड़ा पहाड़ी जगह है; इसलिए अब्बूख़ाँ की बकरियाँ भी पहाड़ी नस्ल की होती थीं।

छोटे काले-काले सींग ऐसे मालूम होते थे कि किसी ने आबनूस की काली लकड़ी में खूब मेहनत से तराशकर बनाये हैं। लाल-लाल आँखें तुम देखते तो कहते कि अरे यह बकरी तो हमने ली होती ! यह बकरी देखने ही में अच्छी न थी, मिज़ाज की भी बहुत अच्छी थी। प्यार से अब्बूखाँ के हाथ चाटती थी। दूध चाहे तो कोई बच्चा दुह ले, न लात मारती थी, न दूध का बर्तन गिराती थी। अब्बूखाँ तो बस उस पर आशिक-से हो गये थे। इसका नाम चाँदनी रखा था और दिन भर उससे बातें करते रहते थे। कभी-कभी चचा घसीटाखाँ का किस्सा उसे सुनाते थे, कभी मामू नत्थू का।

अब्बूखाँ ने यह सोचकर कि बकरियाँ शायद मेरे तंग आँगन में घबड़ा जाती हैं, अपनी उस बकरी चाँदनी के लिए नया इन्तजाम किया था। घर के बाहर उनका एक छोटा-सा खेत था उसके चारों तरफ़ उन्होंने न जाने कहाँ कहाँ से काँटे जमा करके डाले थे कि कोई उसमें न आ सके। उसके बीच में चाँदनी को बाँधते थे और रस्सी खूब लम्बी रखी थी कि खूब इधर-उधर घूम सके। इस तरह चाँदनी को अब्बूखाँ के यहाँ खासा जमाना गुज़र गया। और अब्बूखाँ को यक़ीन हो गया कि आख़िर को एक बकरी तो हिल गई, अब यह न भागेगी।

मगर अब्बूखाँ धोखे में थे। आज़ादी की ख़ाहिश इतनी आसानी से दिल से नहीं मिटती। पहाड़ और जंगल में रहनेवाले आज़ाद जानवरों का दम घर की चारदीवारी में घुटता है, तो काँटों से घिरे हुए खेत में भी उन्हें चैन नसीब नहीं होता। क़ैद—क़ैद सब एक-सी। थोड़े दिन के लिए चाहे ध्यान बँट जाय, मगर फिर पहाड़ और जंगल याद आते हैं और क़ैदी अपनी रस्सी तुड़ाने की फ़िक्र करता है। अब्बूखाँ का खयाल ठीक न था कि चाँदनी पहाड़ की हवा भूल गई है।

चाँदनी के लिए यह दिन भी अजीब था। दोपहर तक इतनी उछली कूदी कि शायद सारी उम्र में इतनी उछली-कूदी न होगी। दोपहर ढले उसे पहाड़ी बकरियों का एक गल्ला दिखाई दिया। गल्ले की बकरियों ने उसे खुशी खुशी अपने पास बुलाया और उससे हाल-अहवाल पूछा। गल्ले में कुछ जवान बकरे भी थे, उन्होंने भी चाँदनी की बड़ी खातिर-तवाज़ा की, बल्कि उसमें एक बकरा था, ज़रा काले-काले रंग का, जिस पर कुछ सफेद धप्पे थे। वह चाँदनी को भी अच्छा लगा और यह दोनो बहुत देर तक इधर-उधर फिरते रहे। उनमें न जाने क्या-क्या बातें हुईं। और कोई था नहीं, एक सोता पानी का बह रहा था, उसने सुनी होंगी। कभी कोई वहाँ जाय और उस सोते से पूछे, तो शायद कुछ पता लगे और फिर भी क्या खबर, यह सोता भी शायद न बताये!

खैर, बकरियों का गल्ला तो न मालूम किधर चला गया। वह जवान बकरा भी इधर-उधर घूमकर अपने साथियों में जा मिला!

चाँदनी को भी अभी आज़ादी की इतनी ख्वाहिश थी कि उसने गल्ले के साथ होकर अभी से अपने ऊपर पाबन्दियाँ लेना गवारा न किया और एक तरफ़ चल दी। शाम का वक्त हुआ, ठण्डी हवा चलने लगी। सारा पहाड़ लाल-सा हो गया और चाँदनी ने सोचा, ओह हो, अभी से शाम!

नीचे अब्बूखाँ का घर और वह काँटोंवाला घर दोनो कुहरे में छिप गये। नीचे कोई चरवाहा अपनी बकरियों को बाड़े में बन्द करने के लिए लिये जा रहा था, उनकी गर्दन की घण्टियाँ बज रही थी। चाँदनी उस आवाज़ को खूब पहचानती थी। उसे सुनकर उदास सी हो गई। होते-होते अँधेरा होने लगा और पहाड़ में एक तरफ से आवाज आई—खू—खू!

यह आवाज़ सुनकर चाँदनी को भेड़िये का खयाल आया। दिन-

कर ले। जीत-हार पर अपना काबू नहीं। वह अल्लाह के हाथ है, मुकाबिला जरूरी है। जी में यह सोचती थी कि देखूँ, मैं कल्लू की तरह रात-भर मुकाबिला कर सकती हूँ या नहीं।

कुछ देर जब गुज़र गई, तो भेड़िया बढ़ा। चाँदनी ने भी सींग सँभाले और वह हमले किये कि भेड़िये का ही जी जानता होगा। दसियों मरतबा उसने भेड़िये को पीछे रेल दिया। सारी रात इसी में गुज़री। कभी-कभी चाँदनी ऊपर आसमान की तरफ देख लेती और सितारों से आँखों-आँखों में कह देती—ऐ! कहीं इसी तरह सुबह हो जाय!

सितारे एक-एक करके गायब हो गये। चाँदनी ने आखिरी वक्त में अपना जोर दुगुना कर दिया। भेड़िया भी तंग आ गया था कि दूर से एक रोशनी-सी दिखाई दी। एक मुर्ग ने कहीं से बाँग दी। नीचे बस्ती में मस्जिद से अज़ान की आवाज़ आई। चाँदनी ने दिल में कहा कि अल्लाह तेरा शुक्र है। मैंने अपने बस-भर मुकाबिला किया, अब तेरी मरज़ी! मुअज्ज़न * आखिरी दफ़ा 'अल्लाह अकबर' कह रहा था, कि चाँदनी बेदम ज़मीन पर गिर पड़ी। उसका सफेद बालों का लिबास खून से बिल्कुल सुर्ख था। भेड़िये ने उसे दबोच लिया और खा गया।

और दरख्त पर चिड़ियाँ बैठी देख रही थीं। उनमें इस पर बहस हो रही है कि जीत किसकी हुई। बहुत कहती हैं कि भेड़िया जीता। एक बूढ़ी-सी चिड़िया है, वह कहती है,—चाँदनी जीती!

* अज़ान देनेवाला।

सदीक हुसैन नजमी

डाक्टर सदीक हुसैन नजमी पंजाब के प्रख्यात कहानीकार हैं। आपने उर्दू में कुछ बहुत ही ऊँचे दर्जे की प्रेम-कथाएँ लिखी हैं। आपकी भाषा, आपकी शैली सभी एक प्रेम-कथा लिखने के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। पंजाब के देहाती जीवन का इतना सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण श्री सदीक हुसैन के अतिरिक्त शायद ही कहीं मिले।

'तारू' में Romance का इतना जोरदार और पुरजोश चित्रण है कि पाठक अपनी सुध-बुध खो देता है। इस कहानी का असर एक अर्से तक एक गहरी व्यथा के रूप में छाया रहता है। और यह तब जब पाठक कहानी के घटना-स्थल से बहुत दूर रहता है। जो उसी वातावरण में रहते हैं, उनके लिए तो इसमें प्राचीन कथाओं का-सा रस और आकर्षण और आघातकारिणी शक्ति है। और पंजाब के कृषक-जीवन का यह बिलकुल सच्चा चित्र है। कहानी अपनी सफलता में नजमी साहब की और कहानियों को बहुत पीछे छोड़ गई है।

तारू

तारू

माघ महीना शुरू हुए कुछ ही दिन हुए हैं। पंजाब के प्रसिद्ध 'इलाका माझा के केन्द्र में स्थित 'जल्लो-के' में सन्ध्या कब की हो चुकी है। इस गाँव के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जब तक गाँव का कोई लड़का चोरी करके अपने पुरुषत्व का सबूत नहीं दे लेता, वह पगड़ी बाँधने का अधिकारी नहीं समझा जाता। प्रकट में सारा गाँव शान्ति में डूबा हुआ है। एक निस्तब्धता-सी सब ओर छाई हुई है। कहीं-कहीं किसी गोबर के ढेर से एक मुर्ग दाना कुरेदकर निकालता है और विजयी की भाँति अपने हरम की सबसे चहेती मुर्गी को बुलाता है और उसके दाना चुग लेने पर संतुष्ट हो, अकड़कर एक अज़ान देता है। कहीं कहीं उस मुर्गी की 'कीं-कीं' भी सुनाई देती है जो अंडा देने के लिए उचित स्थान खोज कर रही है। इस निस्तब्धता को कभी कभी किसी ममता की मारी गाय का आतुर स्वर भी थरथरा देती है। जा-

लड़का नगर से एक साइकल ले आया है। हुसैना टमटमवाला एक ग्रामोफ़ोन बाजा ले आया है और अब उसके घर से हर वक्त—'पल्ला मारके बुझा गई दीवा'*—और ऐसे ही गीतों की आवाज़ आती रहती है। दादा रंगीला जो नम्बरदार की बड़ी लड़की को उसके ससुराल से लेने गया था, आती बार नगर से सोने का एक दाँत लगवा लाया है।

इस व्यापक सम्पन्नता से प्रभावित होकर पालासिंह ने अपने इकलौते बेटे तारु का छोहारा डाल दिया है।× यद्यपि तारू की आयु अभी पाँच वर्ष की है; पर खाते पीते घर का दीपक है और खाते-पीते घर का लड़का सगाई के बिना रह जाना ठीक नहीं समझा जाता। वैसे भी इस बात से सब सहमत है कि खुशी को एक दिन के लिए भी स्थगित कर रखना ठीक नहीं, इसलिए इस वक्त पालासिंह की हवेली में खूब चहल पहल है। भाई-बन्धु और मित्र सब मौजूद हैं। दरिया के इलाके की खास मसालेवाली शराब के कई कनस्तर विशेष रूप से मँगाये गये हैं। यद्यपि सुबह से शराब की कई बाल्टियाँ खाली हो चुकी हैं, पर आश्चर्य तो यह है कि सबके होश पूरे तौर पर अभी नहीं उड़े।

'अगर कोई मेरे सिर से एक पा (पाव) खून निकाल दे'—पालासिंह ने चैलेंज किया—तो मैं उसे एक पगड़ी और सवा रुपया इनाम दूँगा।

'तू एक पा कहता है, मैं तेरे सिर से एक सेर खून निकालने को तैयार हूँ!'—हीरे चौधरी ने चैलेंज को स्वीकार करते हुए अपनी लाठी सँभालकर कहा।

इस पर दोनो एक दूसरे पर ज्वालाओं की भाँति झपटे; पर साथवालों ने पकड़ लिया और बीच-बचाव कर दिया।

---

* आँचल मारकर दीपक बुझा गई।

× सगाई कर दी है।

उसके बाकी साथी भी चिंघाड़ रहे थे। पालासिंह ललकारता और ऊँट की तरह गुर्राता हुआ आगे बढ़ा। चौधरी हीरे ने लाठी उठाकर 'अली' का नारा लगाया और आँखों में खून भरे, नथने फुँकारते सब एक दूसरे से गुथ गये। लगभग आध घण्टे तक गाँव में एक प्रलय मचा रहा। बाकी गाँववालों को पहले तो यह साहस भी न हुआ कि इस धधकती आग में कूदें और यदि कोई दिलवाला बीच में कूदा भी तो उसे इसकी भारी कीमत देनी पड़ी। अन्त में जब दोनों ओर के चार आदमी काम आये और डेढ़ दर्जन बुरी तरह घायल हुए और गली मनुष्य के गरम-गरम रक्त से लाल हो गई, तो यह तूफान अपना पूरा ज़ोर दिखाकर अपने आप बुझ गया।

उसी वक्त कुछ ज़िम्मेदार आदमियों ने समीप के डाक्टर और पुलिसवालों को खबर दे दी। जब ये लोग घटना-स्थल पर पहुँचे तो उन्होंने महसूस किया कि गली की हवा तक में गर्म खून और पसीने की गन्ध बसी हुई है, और कृपाणों और छुरियों ने जी-भरकर मनुष्य का लोहू पिया है। पालासिंह ने अस्पताल में पहुँचकर दूसरे ही दिन जान दे दी। चौधरी हीरे ने भी मित्रता का हक़ अदा किया। उसके शरीर पर चालीस घाव पाये गये, जिनमें से अधिकांश किसी भयानक तेज़ धारवाले शस्त्र से लगे हुए थे। अर्जू के शरीर का भी कोई हिस्सा खाली न था, पर जाने उसकी सहन-शक्ति किस बला की थी कि एक महीने बाद फिर चलने-फिरने के योग्य हो गया। कहते हैं, जिस परिश्रम और सरगर्मी से इस मामले की जाँच हुई, पहले कभी नहीं हुई। इस मामले के सम्बन्ध में लगभग एक महीने तक थाने के अधिकांश कर्मचारियों को इसी गाँव में आना-जाना पड़ा। जिसके खतम होने पर पालासिंह की ज़मीन का बड़ा हिस्सा निहाल शाह के पास गिरवी था। दोनों ओर के कुछ आदमी मुक्त हुए और कुछ सज़ा पा गये। शधारू को पाँच वर्ष कड़े कारावास का दण्ड मिला।

भूत का साया है ; पर फौजासिंह सियाने ने अपनी तरफ से पूरा ज़ोर लगाया, जिन्दों को बाँधकर कई बार पीटा, दर्शनी आग में तपाकर दाग भी दिये , पर लाभ कुछ नहीं हुआ । अन्त में बेचारी कुछ महीने बाद ही अपने स्वामी के साथ जा मिली ।

ज़मीन का अधिकांश भाग तो पहले ही कचहरी और थाने की भेंट हो चुका था । पति के मृत्यु के बाद तारू की मा ने काश्त के लिए आतू मजहबी (सिख भंगी) को ला बिठाया था ; पर भूमि का मामला ही बड़ी कठिनाई से पूरा होता था ।

उस बेचारी के निधन के बाद तारू के चचा कालासिंह ने भूमि का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया । आदमी पुरुषार्थी था, शीघ्र ही आय और खर्च बराबर कर लिया और सच तो यह है कि उसने भतीजे को भी कोई कष्ट न होने दिया ; बल्कि उसकी अनुचित नाज़-बरदारियाँ भी कीं । यह और बात है कि आज ज़मीन का सारा प्रबन्ध उसके हाथ में है और आज एक गज भूमि भी ऐसी नहीं जिसे तारू अपनी कह सके ।

माता-पिता की मृत्यु के बाद जब तारू ने होश सँभाला तो गाँव के दूसरे लड़कों की भाँति उसे भी ढोर-डगर चराने का काम दिया गया । दूसरे लड़कों की भाँति पहर दिन गये वह भी मक्की की रोटी और लस्सी का नाश्ता करके और रोटी और साग चादर के किनारे बाँधकर घर के डगर हाँक लेता और फिर शाम के कुछ पहले वापस आता । गडरियों की एक भिन्न और पृथक श्रेणी है, जिसके अपने विशेष गुण होते हैं । चूँकि तारू की गायें, भैंसे उसकी बेपरवाही के कारण कभी-कभी मार्ग के इर्द-गिर्द की फसलों से एक-आध ग्रास ले लेतीं, इस कारण से उसे भाँति-भाँति की गालियाँ सुनने का अवसर मिलता रहता । इसलिए उसने सर्वथा माडर्न (Modern) गालियाँ सीख लेने में आश्चर्यजनक प्रतिभा का परिचय दिया । दोपहर के वक्त जब गायें, भैंसें धूप की गरमी से तंग आकर वृक्षों की छाया में बैठ जातीं

ाहती थी और अधिक-से-अधिक बोली की इच्छा रखती थी। तारू । जब कभी बसो के मकान के पास से गुज़रता तो उसकी मूँछ की क और भी अधिक बारीक हो जाती और ऊपर की तरफ़ अकड़ ाती और उसका जोगिया तहबन्द ज़मीन पर और भी ज्यादा लटकता ्खाई देता। बसो की आँखों में भी उसे देखकर एक विशेष नरमी ा जाती और कभी-कभी मुस्करा भी देती; लेकिन वह भली भाँति ह बात जानता था कि उसके लिए कोई मौका नहीं, क्योंकि वह त्यन्त विपन्न और निर्धन मात्र है।

. शंघारू कारावास से मुक्त होकर अपने बाल-बच्चों के साथ अपने रब्बों (नहरी इलाके में नई ज़मीनों) पर चला गया था। वहाँ ़सका काम भी अच्छा हो गया था। उसका बड़ा लड़का हज़ारू तारू ा समवयस्क ही था। कभी-कभी बाप-बेटा अपने पुराने गाँव में आते। ़क बार शंघारू ने हज़ारू के लिए बंसो की मा से इच्छा प्रकट की। ़हुत बात-चीत के बाद बारह सौ पर सौदा तय हो गया। उसे तारू ने तब यह सुना तो उसके सीने पर साँप लोट गया। उसे ऐसा प्रतीत ़ुआ जैसे उसकी आत्मा में किसी ने लोहे की मेख गाड़ दी हो।

लेकिन जाने किस बुरी घड़ी में बंसो ने ससुराल में पग धरा कि उसके आते ही असंतोष की लहर-सी घर में फैल गई। एक तो उसकी मा के लालच के कारण सबके दिल में बुझ गये थे और सब उसे १२०० में मँहगा सौदा ख्याल करते थे, दूसरे पण्डितवाली बात उन तक किसी न किसी तरह पहुँच गई और एक दिन उसे हज़ारू ने ताना भी दिया कि तू तो भाई, बड़ी विद्वान (विदुषी) ठहरी बचपन से पण्डित पाधो के चरणों में जो रही है। सास से भी आते ही उसकी दूध पर कुछ अनबन-सी हो गई थी। कुछ दिन तो किसी न किसी तरह उसने सुसराल में काटे, लेकिन जब उसकी मा उससे मिलने आई और उसे बहाने बनाकर साथ ले । ई तो बसो ने गुरु महाराज को धन्यवाद दिया।

ाहती थी और अधिक-से अधिक बोली की इच्छा रखती थी। तारू
ो जब कभी बसो के मकान के पास से गुज़रता तो उसकी मूँछ की
ोक और भी अधिक बारीक हो जाती और ऊपर की तरफ़ अकड़
ाती और उसका जोगिया तहबन्द ज़मीन पर और भी ज्यादा लटकता
दिखाई देता। बसो की आँखों में भी उसे देखकर एक विशेष नरमी
ा जाती और कभी-कभी मुस्करा भी देती; लेकिन वह भली भाँति
ह बात जानता था कि उसके लिए कोई मौका नहीं, क्योंकि वह
अत्यन्त विपन्न और निर्धन मात्र है।

शंघारू कारावास से मुक्त होकर अपने बाल-बच्चों के साथ अपने
मुरब्बों (नहरी इलाके में नई ज़मीनों) पर चला गया था। वहाँ
उसका काम भी अच्छा हो गया था। उसका बड़ा लड़का हज़ारू तारू
का समवयस्क ही था। कभी-कभी बाप-बेटा अपने पुराने गाँव में आते।
एक बार शंघारू ने हज़ारू के लिए बंसो की मा से इच्छा प्रकट की।
बहुत बात-चीत के बाद बारह सौ पर सौदा तय हो गया। उसे तारू ने
जब यह सुना तो उसके सीने पर साँप लोट गया। उसे ऐसा प्रतीत
हुआ जैसे उसकी आत्मा में किसी ने लोहे की मेख गाड दी हो।

लेकिन जाने किस बुरी घड़ी में बंसो ने ससुराल में पग धरा कि
उसके आते ही असंतोष की लहर-सी घर में फैल गई। एक तो उसकी
मा के लालच के कारण सबके दिल में बुक गये थे और सब उसे १२००
में मँहगा सौदा खयाल करते थे, दूसरे पंडितवाली बात उन तक किसी
न किसी तरह पहुँच गई और एक दिन उसे हज़ारू ने ताना भी दिया
कि तू तो माई, बड़ी विद्वान (विदुषी) ठहरी बचपन से पंडित पांडो
के चरणों में जो रही है। सास से भी आते ही उसकी दूध पर कुछ
अतबन-सी हो गई थी। कुछ दिन तो किसी न किसी तरह उसने सुसराल
में काटे, लेकिन जब उसकी मा उससे मिलने आई और उसे बहाने
बनाकर साथ ले गई तो बंसो ने गुरु महाराज को धन्यवाद दिया।

से पहले जरा आँगन में गई है और वहाँ से मावाले दालान में, जहाँ तारू एक कोने में छिपा खड़ा है। उसे आलिङ्गन में लेकर कहती है—आज काम अवश्य हो जाय। तारू ने एक बिजली की लहर अपने शरीर में महसूस की, पर मौन रहा।

वसो को बाहर से आये चन्द मिनट हुए हैं। उसने अपने काँटे कानों से निकालकर चारपाई के एक कोने में रखे हैं और अपना दुपट्टा तह करके तकिए के नीचे रखा है और सोने की तैयारी कर रही है। इतने में कमरे का दराज़ा अचानक खुला और बन्द हो गया। हज़ारू की नजर एक युवक पर पड़ी जिसने अपना मुँह और सिर इस तरीके से चादर में लपेट रखा था कि उसकी आँखें और नाक ही केवल बाहर थी।

'यह कौन ?'—हज़ारू के मुँह से अनायास निकला।

'वही जो तुझे ढूँढ रहा था'—वसो ने दरवाजे की कुंडी अन्दर से लगाते हुए कहा। पर इससे पहले कि हजारू अपनी जगह से हिलता या वसो का वाक्य समाप्त होता, तारू बिफरे हुए शेर की भाँति एक ही छलाँग में हजारू के ऊपर था, और उसके दोनो हाथ अपनी पूरी शक्ति से हजारू के गले पर लोहे की भाँति जम चुके थे।

यह सब कुछ पलक झपकते हो गया। हजारू ने बहुतेरे हाथ-पाँव मारे पर तारू उस पर काबू पा चुका था, और चन्द मिनट बाद हज़ारू की बेजान लाश कमरे में पड़ी थी।

अब तारू अपने यार गिद्दड़सिंह नाई की सहायता से लाश को गठरी में बाँधकर बाहर खेत में ले गया। वहाँ उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके पासवाली बड़ी नहर में फेंक दिये। उसके कपड़े जलाकर जमीन में दबा दिये और सब काम से फ़ारिग होकर सतोष से आकर सो रहा।

हुई भेड़ों का रेवड़ वापस लाता है तो वह कभी-कभी तान लगा देता है—

तारू !
अखियाँ बिगड़ गइय्या
या दारू ! *

---

* ऐ तारू मेरे विरह में रोते रोते आँखें खराब हो गई हैं। इनमें आकर दवा डाल।

इम्त्याज़अली 'ताज़'

श्री इम्तियाज अली ताज 'कहकशा' के सम्पादक थे और पंजाब की सबसे बडी उर्दू की प्रकाशन-संस्था 'दारुलअशात पंजाब' के मालिक हैं। आपकी पहली कहानियां 'गुलाबी माछो' आदि जो 'परवजन' नामक उर्दू के पत्र में प्रकाशित हुई थीं, अंग्रेजी से ली गई थीं। आपका एक बहुत ही सफल नाटक 'अनारकली' भी प्रकाशित हो चुका है जो नाटकीय सफलता प्राप्त कर चुका है। उनके जोड का नाटक उर्दू में इधर वर्षों में प्रकाशित नहीं हुआ है। सैयद इम्तयाज भाषा बडी ही चुस्त और सीधी लिखते हैं। उनकी रवानी उनकी अपनी चीज है। पहले की चीजें आपकी, जरूर कृत्रिम और लच्छेदार भाषा में लिखी गई हैं, पर उनमें आपको सफलता नहीं मिली।

'चचा छक्कन' आपका एक अमर चरित्र है। लेखक ने अपने इस चरित्र की रचना में अंग्रेजी के प्रसिद्ध हास्य-लेखक जेरोम के० जेरोम के कुछ हास्य-निबन्धों से सहायता ली है। पर आपने चचा छक्कन को कुछ ऐसा भारतीय या अधिक सही तौर पर मुसलमानी जामा पहनाया है कि कोई कयास भी नहीं कर सकता कि आपने किसी विदेशी सामग्री की सहायता अपने इस चरित्र के निर्माण में ली है। और इसी कारण से उनमें से एक कहानीनुमा निबन्ध इस संग्रह में भी स्थान पा रहा है, जब कि यहां पर केवल मौलिक कहानियों के ही प्रस्तुत करने का आयोजन किया गया है।

'चचा छक्कन ने सबके लिए केले खरीदे' एक उत्तम हास्य-निबन्ध है। इसकी सफलता के विषय में अधिक कहना उसके महत्त्व को क्षति पहुँचाना होगी।

चचा छक्कन ने सबके लिए केले खरीदे

चचा ढूँढ ढूँढकर उनकी ओर ध्यान देते हैं। इससे चची को यह भाव प्रदर्शित करना इष्ट होता है कि घर की मशीन में उनका अस्तित्व एक निरर्थक पुर्ज़े से अधिक महत्त्व नहीं रखता और यह चचा ही की जातिगत महानता का प्रभाव है कि दृष्टि को घर में व्यवस्था और सुघड़ता के कोई चिह्न नहीं दिखाई देते हैं!

आज आपकी क्रियाशील बुद्धि ने चची की अनुपस्थिति में घर के तमाम ऐसे बर्तन जो पीतल के थे, आँगन में जमा कर लिये थे। बिन्दो को बज़ार भेजकर दो पैसे की इमली मँगाई थी; आँगन में मोढा डालकर बैठ गये थे, पाँव मोढे के ऊपर रखे हुए थे, हुक्के का नैचा मुँह से लगा था। व्यक्तिगत निगरानी में पीतल के बर्तनों की सफ़ाई की व्यवस्था हो रही थी।

'अरे अहमक, अब दूसरा बर्तन क्या होगा, जो बर्तन साफ़ करने हैं, उनही में से किसी एक में इमली भिगो डाल। और क्या...यों... बस यही पीतल का लोटा काम दे जायगा। साफ़ तो इसे करना ही है, एक दूसरा बर्तन लाकर उसे खराब करने से क्या लाभ! ऐसी बातें तुम लोगों को खुद क्यों नहीं सूझ जाया करतीं!'

बिन्दो ने आज्ञा-पालन में कुछ कहे बिना इमली लोटे में डाल भिगो दी। चचा ने अभिमान से सन्तोष का प्रदर्शन किया—कैसी बताई तरकीब! ज़रूरत भी पूरी हो गई और अपना...यानी काम भी एक हद तक हो गया। ले अब बावरचीख़ाने जाकर बरतन माँजने को थोड़ी-सी राख ले आ। किस बरतन में लायेगा भला!

बिन्दो ने बड़ी बुद्धिमत्ता से सभी बरतनों पर दृष्टि डाली और उनमें से एक थाली उठाकर चचा की तरफ देखने लगा। चचा भी इस काम के लिए शायद थाली ही तजवीज़ करना चाहते थे। राय देने का गौरव न मिल सका। पूछने लगे—क्यों भला!

बिन्दो बोला—चूल्हे से उठाकर इसमें आसानी से राख रख लूँगा।

चचा ढूँढ़ ढूँढकर उनकी ओर ध्यान देते हैं। इससे चची को यह भाव प्रदर्शित करना इष्ट होता है कि घर की मशीन में उनका अस्तित्व एक निरर्थक पुर्जे से अधिक महत्त्व नहीं रखता और यह चचा ही की जातिगत महानता का प्रभाव है कि दृष्टि को घर में व्यवस्था और सुघड़ता के कोई चिह्न नहीं दिखाई देते हैं!

आज आपकी क्रियाशील बुद्धि ने चची की अनुपस्थिति में घर के तमाम ऐसे बर्तन जो पीतल के थे, आँगन में जमा कर लिये थे। बिन्दो को बज़ार भेजकर दो पैसे की इमली मँगाई थी; आँगन में मोढ़ा डालकर बैठ गये थे, पाँव मोढ़े के ऊपर रखे हुए थे, हुक्के का नैचा मुँह से लगा था। व्यक्तिगत निगरानी में पीतल के बर्तनों की सफ़ाई की व्यवस्था हो रही थी।

'अरे अहमक़, अब दूसरा बर्तन क्या होगा, जो बर्तन साफ़ करने हैं, उनही में से किसी एक में इमली भिगो डाल। और क्या...यों... बस यही पीतल का लोटा काम दे जायगा। साफ़ तो इसे करना ही है, एक दूसरा बर्तन लाकर उसे खराब करने से क्या लाभ? ऐसी बातें तुम लोगों को खुद क्यों नहीं सूझ जाया करतीं!'

बिन्दो ने आज्ञा-पालन में कुछ कहे बिना इमली लोटे में डाल भिगो दी। चचा ने अभिमान से सन्तोष का प्रदर्शन किया—कैसी बताई तरकीब! ज़रूरत भी पूरी हो गई और अपना...यानी काम भी एक हद तक हो गया। ले अब बावरचीखाने जाकर बरतन माँजने को थोड़ी-सी राख ले आ। किस बरतन में लायेगा भला!

बिन्दो ने बड़ी बुद्धिमत्ता से सभी बरतनों पर दृष्टि डाली और उनमें से एक थाली उठाकर चचा की तरफ देखने लगा। चचा भी इस काम के लिए शायद थाली ही तजवीज़ करना चाहते थे। राय देने का गौरव न मिल सका। पूछने लगे—क्यों भला!

बिन्दो बोला—चूल्हे से उठाकर इसमें आसानी से राख रख लूँगा।

हाँ, देखना अब ज़रा देर में इन बरतनों की शकल क्या निकल आती है...अच्छे हैं केले...बस यूँ ही। ज़रा ज़ोर से हाथ...इस तरह...छुट्टन की अम्माँ देखेंगी तो समझेंगी, आज ही नये बरतन खरीद किये हैं। और फिर लुत्फ़ यह कि खर्च कुछ भी नहीं। हर्र लगे न फिटकिरी, रङ्ग चोखा आये। आखिर कितने की आ गई इमली? न, न, खुद ही कहो, कितने की आई इमली? दो पैसे की ना? तू आप खरीदकर लाया था। और फिर जो कुछ किया तूने अपने हाथ से किया। यह तो हुआ नहीं कि तुझसे आँख बचाकर हमने बीच में कुछ मिला दिया हो। बस, यह जितनी भी करामत है सिर्फ़ इमली की है। महज़ इमली की। और वह मैंने कहा, अब कै केले बाकी रह गये हैं? दस? हूँ। खूब चीज़ है ना इमली? एक टके के खर्च में कायापलट हो जाती है। मगर बिन्दो, इन दस केलों का हिसाब बैठेगा किस तरह? यानी हम शरीक न हों जब तो हरएक को दो केले मिल रहेंगे; लेकिन हमारे साझे के बिना शायद दूसरों का जी भी खाने को न चाहे। क्यों? छुट्टन की अम्माँ तो हमारे बग़ैर नज़र उठाकर भी न देखना चाहेंगी। तूने खुद देखा होगा, कई बार ऐसा हो चुका है। और बच्चों में भी दूसरे हज़ार ऐब हों, पर इतनी खूबी ज़रूर है कि लालची और स्वार्थी नहीं हैं। सबने मिलकर शरीक होने के लिए हमसे अनुरोध शुरू कर दिया तो बड़ी मुश्किल होगी। बराबर-बराबर बाँटने के लिए केले काटने ही पड़ेंगे और कलकतिया केले की बिसात भला क्या होती है। काटने में सबकी मिट्टी पलीद होगी। कै केले बताये थे तूने? दस? दस केले और छः आदमी। टेढ़ी बात है। मगर हम कहते हैं समझो फ़ी आदमी एक-एक का हिसाब रख दिया जाय तो? दो-दो न सही। एक-एक ही हो, मगर खाँय तो सब हँसी-खुशी, मिल-जुलकर। ठीक है ना? गोया छः रख छोड़ने ज़रूरी हैं। तो इस सूरत में के केले ज़रूरत से ज्यादा हुए? चार ना, हूँ। तो मेरे खयाल में वह चारों शायद केले ले आता।

कोई चीज़ आदमी खाये उसी वक्त जब उसके खाने को जी चाहे। छुट्टन की अम्माँ की हमेशा से यही कैफ़ियत है। जी चाहे तो चीज़ खाती हैं, न चाहे तो कभी हाथ नहीं लगातीं। हमारा अपना यही हाल है। यह फ़ुटकर चीज़ें खाने को कभी-कदास ही जी चाहता है। होना भी ऐसा ही चाहिये। अब यही केले हैं, बीसियों मर्तबा दूकानों पर रखे देखे, कभी रुचि न हुई। आज जी चाहा तो खाने बैठ गये। अब फिर न जाने कब जी चाहे। हमारी तो कुछ ऐसी तबियत है। न जाने शाम को जब तक सब आयें रुचि रहे या न रहे। निश्चय से क्या कहा जा सकता है। दिन ही तो है, मुमकिन है उस वक्त केले के नाम से मन में घृणा हो। तो ऐसी सूरत में हम जावें। हम तो बाकी छः केलों में से अपने हिस्से का एक केला अभी खा लेते हैं। क्यों? और क्या। अपनी-अपनी तबीयत है, अपनी-अपनी भूख। जब जिसका जी चाहे खाये, इसमें तकल्लुफ क्या। ऐसे मामलों में तो बेतकल्लुफी ही अच्छी—

'ए ज़ौक़ तकल्लुफ में है तकलीफ़ सरासर
आराम से वह हैं जो तकल्लुफ नहीं करते।'

तो ज़रा उठियो मेरा भाई। बस मेरे ही हिस्से का केला लाना। बाक़ी के सब वहीं अच्छी तरह रखे रहें।'

आज्ञा के अनुसार बिन्दो ने केला चचा को ला दिया। चचा छीलकर खाने लगे।

'देख क्या सूरत निकल आई बरतनों की! सुभान अल्लाह। यह इमली का नुस्खा मिला ही ऐसा है। अब इन्हें देखकर कोई कह सकता है कि पुराने बरतन हैं! जो देखेगा यही समझेगा, अभी-अभी बाज़ार से मँगवाकर रखे हैं। दूसरों की क्या बात। हमारी गैरहाज़िरी में यूँ साफ़ किये गये होते, तो वापस आकर हम खुद न पहचान सकते। छुट्टन की अम्माँ भी देखेंगी तो एक बार तो ज़रूर चौंक पड़ेंगी। मुझसे पूछें तो कह दीजो, मियाँ सारी दोपहर बैठकर साफ़ कराते रहे हैं। पर

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' पंजाब के एक नवयुवक हैं, जिनकी आयु अभी २६—२७ वर्ष से अधिक नहीं है। लगभग ७ वर्षों से उर्दू में कहानियाँ लिखते रहे हैं और अब उनकी भाषा और उनके विचारों में वह प्रौढ़ता आ गई है जो किसी को यह अन्दाज लगाने नहीं देती कि आप इतने अल्पवयस्क हैं। उर्दू में आपकी कहानियों का एक संग्रह 'औरत की फ़िहरिस्त' प्रकाशित हुआ था और दूसरी किताबें अब प्रकाशन के रास्ते पर हैं। न केवल आपने कहानियाँ लिखी हैं, वरन् उपन्यास, ड्रामे, झाँकियाँ और एकाकी और कविताएँ भी लिखी हैं। हाल में हिन्दी की ओर भी आपने अपना कदम उठाया है और इतने कम समय में ही आपने उस भाषा में भी अच्छी सफलता और ख्याति पाई है। इस नवयुवक कलाकार से उर्दू और हिन्दी को भविष्य में बड़ी आशाएँ हैं। भाषा आपकी बड़ी पुरानी टकसाली होती है, बिल्कुल सीधी-सादी और मुहाविरेदार। अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने का आपका एक अनूठा ढंग है। जो पाठक के हृदय में सीधा जा बैठता है। आपने पंजाब की गृहस्थी के कुछ बड़े ही सजीव और मार्मिक चित्र अपनी कहानियों में दिये हैं।

'डाची' एक उत्कृष्ट कला-कृति है। चित्रण कितना स्वाभाविक है, यह देखते ही बनता है इसमें Local Colour (स्थानीय प्रभाव) भी खूब है। 'अश्क' जी की कहानियों में इसे एक बहुत ऊँचा स्थान प्रदान करना होगा।

डाची

डाची

'पी-सकन्दर' के मुसलमान जाट बाक़र को अपने माल की ओर लालसा-भरी निगाहों से ताकते देखकर चौधरी नन्दू वृक्ष की छाँह में बैठे-बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज़ में ललकार उठा—रे-रे अठे के करे है ? और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह, जो वृक्ष के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गई और बटन टूटे होने के कारण मोटी खादी के कुर्ते से उसका विशाल वक्ष:स्थल और उसकी बलिष्ठ भुजाएँ दृष्टिगोचर हो उठीं।

बाक़र तनिक समीप आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरअई मूछों के ऊपर गढ़ों में धँसी हुई दो आँखों में निमिष-मात्र के लिए चमक पैदा हुई और ज़रा मुस्कराकर उसने कहा—डाची, देख रहा था चौधरी, कैसी ख़ूबसूरत और जवान है, देखकर भूख मिटती है।

धीरे से बाक़र ने पूछा—बेचोगे इसे ?

नन्दू ने कहा—इठई वेचने लई तो लाया हूँ।

'तो फिर बताओ कितने को दोगे ?'—बाक़र ने पूछा।

नन्दू ने नख से शिख तक बाक़र पर एक दृष्टि डाली और हँसते हुए बोला—तने चाही जै का तेरे धनी वेई मोल लेवो ? *

'मुझे चाहिये।'—बाक़र ने दृढ़ता से कहा।

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मज़दूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर साँडनी मोल ले, बोला—तूँ की लेवी ?

बाक़र की जेब में पड़े हुए डेढ़ सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने के लिए व्यग्र हो उठे, तनिक जोश के साथ उसने कहा—तुम्हें इससे क्या, कोई ले ; तुम्हें तो अपनी कीमत से गरज़ है, तुम मोल बताओ ?

नन्दू ने उसके जीर्ण शीर्ण कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए टालने की गरज़ से कहा—जा—जा तू इसी-विसी ले आई, इंगो मोल तो आठ बीसी सूँ घाट के नहीं।×

एक निमिष के लिए बाक़र के थके हुए व्यथित चेहरे पर आह्लाद की रेखा झलक उठी। उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मोल न बता दे, जो उसकी बिसात से हो बाहर हो ; पर जब अपनी ज़बान से ही उसने १६०) बताये तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। १५०) तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी न माना, तो दस रुपए वह उधार कर लेगा। भाव-ताव तो उसे करना आता न था, झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के आगे

* तुझे चाहिये, या तू अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है ?

× जा, जा तू कोई ऐसी-वैसी साँड खरीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं।

धूल उड़ रही थी। शहरों की माल मंडियों में भी—जहाँ बीसियों अस्थायी नलके लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती; फिर इस रेगिस्तान की मंडी पर तो धूल का ही साम्राज्य था। गन्नेवाले की गँडेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचेवाले के दही-पकौड़ी पर, सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। घड़े का पानी टंकियों द्वारा नहर से लाया गया था; पर यहाँ आते-आते वह कीचड़ जैसा गँदला हो गया था। नन्दू का खयाल था कि निथरने पर पीयेगा, पर गला कुछ सूख रहा था। एक ही घूँट में प्याले को खत्म करके नन्दू ने बाक़र से भी पानी पीने के लिए कहा—बाक़र आया था, तो उसे गज़ब की प्यास थी; पर अब उसे पानी पीने की फ़ुर्सत कहाँ? वह रात होने से पहले-पहले गाँव पहुँचना चाहता था। डाची की रस्सी पकड़े हुए वह धूल को चीरता हुआ चल पड़ा।

× × ×

बाक़र के दिल में बड़ी देर से एक सुन्दर और युवा डाची खरीदने की लालसा थी। जाति से वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे; किन्तु उसके पिता ने अपना पैत्रिक काम छोड़कर मजदूरी करना शुरू कर दिया था, और उसके बाद बाक़र भी इसी से अपना और अपने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता आ रहा था। वह काम अधिक करता हो, यह बात न थी; काम से उसने सदैव जी चुराया था, और चुराता भी क्यों न, जब उसकी पत्नी उससे दुगुना काम करके उसके भार को बँटाने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी, कुटुम्ब बड़ा नहीं था—एक वह, एक उसकी पत्नी और एक नन्ही-सी बच्ची; फिर किस लिए वह जी हलका न करता? किन्तु क्रूर और बेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व महसूस करने पर बाधित कर दिया;

धूल उड़ रही थी। शहरों की माल मंडियों में भी—जहाँ बीसियों अस्थायी नलके लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती; फिर इस रेगिस्तान की मंडी पर तो धूल का ही साम्राज्य था। गन्नेवाले की गँडेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचेवाले के दही-पकौड़ी पर, सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। घड़े का पानी टॉंचियों द्वारा नहर से लाया गया था; पर यहाँ आते-आते वह कीचड़ जैसा गँदला हो गया था। नन्दू का खयाल था कि नियरने पर पीयेगा; पर गला कुछ सूख रहा था। एक ही घूँट में प्याले को खत्म करके नन्दू ने बाक़र से भी पानी पीने के लिए कहा—बाक़र आया था, तो उसे गज़ब की प्यास थी, पर अब उसे पानी पीने की फ़ुर्सत कहाँ! वह रात होने से पहले-पहले गाँव पहुँचना चाहता था। डाची की रस्सी पकड़े हुए वह धूल को चीरता हुआ चल पड़ा।

×　　×　　×

बाक़र के दिल में बड़ी देर से एक सुन्दर और युवा डाची खरीदने की लालसा थी। जाति से वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे; किन्तु उसके पिता ने अपना पैतृक काम छोड़कर मज़दूरी करना शुरू कर दिया था, और उसके बाद बाक़र भी इसी से अपना और अपने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता आ रहा था। वह काम अधिक करता हो, यह बात न थी; काम से उसने सदैव जी चुराया था, और चुराता भी क्यों न, जब उसकी पत्नी उससे दुगुना काम करके उसके भार को बँटाने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी, कुटुम्ब बड़ा नहीं था—एक वह, एक उसकी पत्नी और एक नन्हीं-सी बच्ची; फिर किस लिए वह जी हलका न करता! किन्तु क्रूर और बेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व महसूस करने पर बाधित कर दिया;

डाची लेंगे ; अब्बा हमें डाची ले दो। भोली-भाली निरीह बालिका! उसे क्या मालूम कि वह एक विपन्न गरीब मज़दूर की बेटी है, जिसके लिए डाची खरीदना तो दूर रहा, डाची की कल्पना करना भी गुनाह है। रूखी हँसी हँसकर बाक़र ने उसे अपनी गोद में ले लिया और बोला—रज्जो, तू तो खुद डाची है। पर रज़िया न मानी। उस दिन मशीर माल अपनी साँडनी पर चढ़कर अपनी छोटी लड़की को अपने आगे बिठाये दो-चार मज़दूर लेने के लिए काट में आये थे। तभी रज़िया के नन्हे-से मन में डाची पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी, और उसी दिन से बाक़र का रहा-सहा प्रमाद भी दूर हो गया था।

उसने रज़िया को टाल तो दिया था, पर मन ही मन उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह अवश्य रज़िया के लिए एक सुन्दर-सी डाची मोल लेगा। उसी इलाके में जहाँ उसकी आय की औसत साल-भर में तीन आने रोज़ाना भी न थी, अब आठ-दस आने हो गई। दूर-दूर के गाँवों में अब वह मज़दूरी करता। कटाई के दिनों में वह दिन रात काम करता—फ़सल काटता, दाने निकालता, खलियानों में अनाज भरता, नीरा डालकर भूसे के कुप बनाता, बिजाई के दिनों में हल चलाता, पैलियाँ बनाता, बिजाई करता। इन दिनों में उसे पाँच आने से लेकर आठ आने रोज़ाना तक मज़दूरी मिल जाती। जब कोई काम न होता, तो प्रात उठकर आठ कोस की मंज़िल मार कर मंडी जा पहुँचता और आठ-दस आने की मज़दूरी करके ही वापस लौटता। इन दिनों वह रोज़ छ: आने बचाता आ रहा था। इस नियम में उसने किसी तरह की ढील न होने दी थी। उसे जैसे उन्माद सा हो गया था। बहन कहती—बाक़र, अब तो तुम बिल्कुल ही बदल गये हो, पहले तो तुमने कभी ऐसे जी तोड़कर मेहनत न की थी।

बाक़र हँसता और कहता—तुम चाहती हो, मैं आयु-भर निठल्ला ही बैठा रहूँ!

समीप ही था। यही कोई दो कोस। बाक़र की चाल धीमी हो गई और इसके साथ ही कल्पना की देवी अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से उसके मस्तिष्क के चित्रपट पर तरह-तरह की तस्वीरें बनाने लगी। बाकर ने देखा, उसके घर पहुँचते ही नन्ही रज़िया आह्लाद से नाचकर उसकी टाँगों से लिपट गई है और फिर डाची को देखकर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य और उल्लास से भर गई हैं। फिर उसने देखा, वह रज़िया को आगे बिठाये सरकारी खाले (नहर) के किनारे किनारे डाची पर भागा जा रहा है। शाम का वक्त है, ठंडी-ठंडी हवा चल रही है और कभी कभी कोई पहाड़ी कौवा अपने बड़े-बड़े परों को फैलाये और अपनी मोटी आवाज़ से दो-एक बार काँव-काँव करके ऊपर से उड़ता चला जाता है। रजिया की खुशी का वारापार नहीं। वह जैसे हवाई-जहाज़ में उड़ी जा रही है, फिर उसके सामने आया कि वह रज़िया को लिये बहावल नगर की मंडी में खड़ा है। नन्ही रजिया मानो भौंचक्की सी है। हैरान और आश्चर्यान्वित-सी रुई और अनाज के इन बड़े-बड़े ढेरों, अनगिनत छकड़ों और हैरान कर देनेवाली चीज़ों को देख रही है। बाक़र साह्लाद उसे सब की कैफियत दे रहा है। एक दूकान पर ग्रामोफोन बजने लगता है। बाक़र रज़िया को वहाँ ले जाता है। लकड़ी के इस डिब्बे से किस तरह गाना निकल रहा है, कौन इसमें छिपा गा रहा है—यह सब बातें रजिया की समझ में नहीं आतीं, और यह सब जानने के लिए उसके में जो कौतूहल है, वह उसकी आँखों से टपका पड़ता है।

वह अपनी कल्पना में मस्त काट के पास से गुज़रा जा रहा था कि अचानक कुछ खयाल आ जाने से वह रुका और काट में दाखिल हुआ। मशीर माल की काट भी कोई बड़ा गाँव न था। इधर के सब गाँव ऐसे ही हैं। ज्यादा हुए तो तीस छप्पर हो गये। कड़ियों की छत का या पक्की ईंटों का मकान इस इलाक़े में अभी नहीं। खुद बाक़र की

और रसूख से रियासत की ज़मीन ही में कौडियों के मोल कई मुरब्बे ज़मीन ले ली थी। अब रिटायर होकर यहीं आ रहे थे। गाहक रखे हुए थे, आय खूब थी और मजे से जीवन व्यतीत हो रहा था। अपनी चौपाल में एक तखतपोश पर बैठे वे हुक्का पी रहे थे। सिर पर श्वेत साफा, गले में श्वेत कमीज़, उस पर श्वेत जाकेट और कमर में दूध जैसे रङ्ग का तहमद। गर्द से अटे हुए बाक़र को साँडनी की रस्सी पकडे आते देखकर उन्होंने पूछा—कहो बाकर, किधर से आ रहे हो!

बाक़र ने झुककर सलाम करते हुए कहा—मण्डी से आ रहा हूँ, मालिक।

'यह डाची किसको है?'

'मेरी ही है मालिक, अभी मण्डी से ला रहा हूँ।'

'कितने को लाये हो?'

बाक़र ने चाहा, कह दे आठ बीसी को लाया हूँ। उसके ख़याल में ऐसी सुन्दर डाची २००) में भी सस्ती थी, पर मन न माना, बोला—हजूर माँगता तो १६०) था; पर सात बीसी ही में ले आया हूँ।

मशीर माल ने एक नज़र डाची पर डाली। वे ख़ुद देर से एक सुन्दर सी डाची अपनी सवारी के लिए लेना चाहते थे। उनके डाची तो थी, पर पिछले वर्ष उसे सीमक हो गया था और यद्यपि नील इत्यादि देने से उसका रोग तो दूर हो गया था, पर उसकी चाल में वह मस्ती, वह लचक न रही थी। यह डाची उनकी नज़रों खुब गई। क्या सुन्दर और सुडौल अंग हैं! क्या सफेदी-मायल भूरा-भूरा रंग है! क्या लचलचाती गर्दन है! बोले—चलो हमसे आठ बीसी ले लो, हमें एक डाची की ज़रूरत है, दस तुम्हारी मेहनत के रहे।

बाक़र ने फीकी हँसी के साथ कहा—हज़ूर, अभी तो मेरा चाव भी पूरा नहीं हुआ!

मशीर माल उठकर डाची की गर्दन पर हाथ फेरने लगे थे—वाह!

कृष्णचन्द्र

श्री कृष्णचन्द्र एम० ए० पंजाब के एक नवयुवक कहानी-लेखक हैं। आपने उर्दू में इधर अच्छी ख्याति और प्रतिष्ठा पाई है। आप प्रगतिशील स्कूल के लेखक हैं। कुछ कहानियाँ आपकी बड़ी मार्मिक बनी हैं—जैसे 'दो फर्लांग लंबी सड़क' या 'आँगी' जो यहाँ प्रकाशित की जा रही है।

'आँगी' में रोमान्स का इतना गहरा रंग है कि बरबस आदमी मुग्ध हो जाता है। आज की सभ्यता का मारा हुआ आदमी कहाँ जा पहुँचा है, इसका लेखक ने बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण अपनी इस कहानी में किया है। यह व्यंग बहुत ही पैना, बहुत ही कटु है। पर सच्चाई का तकाजा भी यही है, और इसके लिए लेखक हमारे धन्यवाद का पात्र है। श्री कृष्णचन्द्र की भाषा के विषय में क्या कहा जाय। वह तो बस लाजवाब है। 'आँगी' में ही आपकी भाषा का अच्छा परिचय हमें मिलता है। विषय के बिल्कुल अनुरूप ही भाषा है। 'आँगी' सचमुच अपने स्रष्टा को गौरव प्रदान करने-वाली है।

आँधी

पथिक ने आकाश की ओर कुछ अर्ध-निमीलित नेत्रों से देखा—गहरे नीले रंग में बादलों के श्वेत-श्वेत टुकड़े छोटी-छोटी हिमराशियों की भाँति इधर-उधर तैर रहे थे और उनके समीप चीलें मँडरा रही थीं। 'चीलें'!—उसने हाँफकर मस्तक से पसीना पोंछा। अब कोई गाँव समीप ही होगा। चीलें बताती हैं कि पास ही कहीं मनुष्यों की बस्ती है। उसने सोचा—गिद्ध, कौवे, चीलें, मनुष्य, इन सब जानवरों के लक्षण एक दूसरे से कितने मिलते-जुलते हैं! यही सब सोचते-सोचते वह बहुत-सा मार्ग तय कर गया। कई जगह तिरछी ढलानें थीं, कई जगह ऊँची घाटियाँ थीं, जिनके आँचल में खड़े देखा दिखाई देता था कि उनके शिखरों पर बादलों के भव्य प्रासाद बने हैं; पर जब वह घाटी के शिखर पर पहुँचता तो बादलों के वे प्रासाद सहसा ऊपर उठकर हवा में लटक जाते। इस दुनिया में कितना धोखा है!

में मृग की भाँति कुलाचे भर रही थीं और बेचारी चरवाही को उन्हें रेवड़ के साथ रखने में बड़ी कठिनाई पेश आ रही थी। नेलती कभी भेड़ों के गल्ले में घुस जाती और उन्हें इतना परेशान करती कि वे 'बेआ, बावे,' करती हुई तितर-बितर हो जातीं, और सारे रेवड़ की व्यवस्था को, जो किसी सुव्यवस्थित सेना की भाँति चल रहा था, तोड़ देती। बल्ली नाचती, कूदती हुई बकरियों के समीप जाती और उन्हें धक्के मारकर आसपास के टीलों पर चढ़ा देती। बड़ी-बूढ़ी गायें और भैंसें अत्यन्त संतोष और तनिक उपेक्षा से यह दृश्य देखती जाती थीं, मानो कहती थीं—कर ले दो दिन और मौज, फिर वह दिन भी आयेगा, जब तेरी पिछली लातों को बाँधकर तेरा दूध दुहा जायगा, उस समय उछलना, फिर तेरी चाल भी हमारी ही तरह बेढंगी होकर रह जायगी। अभी जी-भरकर मस्त मृगी की भाँति कुलचें भर ले !

नेलती उछलती हुई पथिक के समीप आ गई। उसके गले में बँधी हुई घंटियों की मनोमुग्धकारी ध्वनि, उसके नाचते हुए पैरों के लिए घुँघरुओं का काम दे रही थी। फिर अपने अगले पाँव टीले पर टेककर पथिक के पाँव सूँघने लगी जैसे जंगल में घास के किसी खोशे को सूँघ रही हो।

'नेलती, हा !'—चरवाही ने अपनी पतली आवाज़ में चिल्लाकर कहा। उसका स्वर भी एक घंटी की मीठी ध्वनि जैसा ही था, पर सुन्दर नेलती ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। शायद शोखी से, शायद शरारत से, बेचारी चरवाही को तंग करने के लिए वह पथिक का बूट चाटने लगी।

'नेलती हा, हा। दुर, नेलती, हो '—उसने फिर डाँटा।

वह पथिक के बिलकुल समीप आ गई और छोटे-से नेलती को सज़ा देने लगी। बेचारी तंग आ गई थी। चेहरे पर पसीने के बिन्दु उभर आये थे और कपोल भी क्रोध से तमतमा गये थे। नेलती को

तुम्हारा क्या नाम है ?

चरवाही ठिठकी—मेरा, मेरा नाम आँगी है। उसने रुकते रुकते कहा—तुम कहाँ से आ रहे हो ?

मुसाफ़िर ने जैसे कुछ सुना ही नहीं, ज़ोर-ज़ोर से रेवड़ को आवाज़ें देने में निमग्न हो गया—

'हुश, हा-हा, नेलती हा, आँगी हा-हा, बल्ली आहा !'

आँगी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई—अच्छा, तो मानो मैं भी एक बछिया हूँ, -ओ हो हो हो ! मैं हँसते हँसते मर जाऊँगी। यह राही कितना विचित्र है......हा-हा.........तुम तो रेवड़ को भी काबू में नहीं रख सकते, इधर लाओ सोंटा। और चरवाही ने हँसते-हँसते मुसाफ़िर से सोंटा छीन लिया।

× × ×

पथिक को सारू गाँव बहुत पसन्द आया। बस कोई बीस-पचीस कच्चे घर थे। श्वेत खड़िया मिट्टी से लिपे हुए, नाशपातियों, केलों, और सेबों के वृक्षों से घिरे हुए। सेब के वृक्षों में फूल आये हुए थे, कच्ची, हरी, छोटी छोटी नाशपातियाँ लटक रही थीं और खेत मकई के पौधों से हरी मखमल बने हुए थे। केलों के एक बड़े झुंड की गोदी में गुनगुनाता हुआ नीला झरना था और उससे परे एक छोटा-सा मैदान था, जिसके मध्य में मन्नू का घना पेड़ अपनी बड़ी-बड़ी शाखाएँ फैलाये खड़ा था। उसकी छाया इतनी लम्बी हो गई थी कि परे और नीचे बहती हुई नदी के किनारे तक पहुँच रही थी। नदी छोटी-सी, किसी कोमल, पतली-सी नागिन की भाँति बल खाती हुई उत्तर पूर्व के हिमाच्छादित पहाड़ों से आ रही थी और डूबते हुए सूरज के पीछे पीछे भाग रही थी। दृष्टि के अन्तिम बिन्दु पर यह दो पहाड़ों के पहले किनारों से गुज़रती हुई मालूम होती थी, जहाँ अब सूरज चमक रहा था। उससे परे मुसाफ़िर का देश था। वहाँ

वह जंगल की देवी थी, यह प्रभात की सुन्दरी है। इस मूर्ति की बनावट निराली है। इस चित्र का रंग नया है, इस गीत की लय अनोखी है, काश वह संगीतज्ञ होता।

आँगी घाटी पर चढ़ आई। वह मुसाफिर के समीप बैठ गई और सोटी को हरी-हरी घास पर रख सुस्ताने लगी। मुसाफ़िर ध्यान से उसके बालों की उस चंचल लट की ओर देखने लगा, जो आँगी के मुख पर उतर आई थी। सहसा आँगी बोल उठी—तुम वापस कब जाओगे राही? जब तुम अपना नाम भी नहीं बताते तो फिर मैं तुम्हें राही ही कहूँगी, ठीक है ना?

मुसाफ़िर ने पुस्तक के पृष्ठ पलटते हुए कहा—'ठीक है, और फिर राही कोई इतना बुरा नाम भी नहीं। बात वास्तव में यह है आँगी, कि मैं यहाँ अपने स्वास्थ्य को ठीक करने आया हूँ। जब अच्छा हो जाऊँगा चला जाऊँगा।

आँगी ने अत्यन्त उत्सुकता से पूछा—किधर जाओगे?

बेपरवाही से दायाँ हाथ उठाकर पथिक ने कहा—उधर जाऊँगा।

'तुम आये कहाँ से हो?'

इस बार पथिक ने दूसरा हाथ फैलाकर कहा—उधर से आया हूँ।

आँगी की आँखें सहसा एक असाधारण ज्योति से चमक उठीं। रुकते-रुकते कहने लगी—राही, तुम कितने विचित्र हो।

और राही दिल में सोचने लगा, क्या सचमुच मैं ही विचित्र हूँ. क्या यह दृश्य विचित्र नहीं, यह स्वप्न की सी नीरवता, यह मृत्यु का सा जीवन आँगी के चेहरे पर बल खाई हुई लट, क्या ये सब विचित्र नहीं? आँगी का कुर्ता जगह-जगह से फटा है और उसमें कई दर्जन पैबन्द लगे हैं; पर वह किस शान से गर्दन ऊँची किये नदी की ओर देख रही है, जिसके पानियों का रंग, उसकी आँखों की भाँति ही नीला है। क्या यह विचित्र बात नहीं? आँगी के हाथ कितने मज़बूत दिखाई

उसकी साँस में मधु की-सी मिठास थी।

× × ×

बरसात के अन्तिम दिनों में मकई की फसल पक गई। सारू गाँव-वालों ने मन्नू के आसपास बड़े-बड़े खलियान लगाये, मकई के खलियान और लम्बी पीली घास के ढेर। मन्नू के समीप ही तीन चार जगहों पर पतली-सी छोटी-छोटी घास को छीलकर धरती के गोल-गोल टुकड़े तैयार किये गये, उन्हें गोबर से लीपा गया, फिर उन पर खड़िया मिट्टी फेर दी गई। अब इनमें मकई के भुट्टों के ढेर के ढेर जमा किये गये और उन पर बैलों को चक्कर दे-देकर चलाया गया ताकि भुट्टे दानों से अलग हो जायँ। इस तरह कुछ भुट्टे तो बिल्कुल साफ़ हो गये ; पर बहुत से भुट्टे सख्त-जान निकले और बैलों के पाँवों तले रौंदे जाकर भी उन्होंने मकई के दानों को अपने शरीरों से अलग न किया। फिर सारू गाँववालों की टोलियाँ बनीं। लोग चाँदनी रात में इकट्टे होकर रौंदे हुए ढेरों के पास बैठे हैं, दायरे बना-बनाकर, और सख्त भुट्टों से दाने अलग कर रहे हैं। नीचे बहती हुई नदी का धीमा-सा शोर है। मन्नू की शाखा में चाँद अटक गया है और उस उदास गीत को सुन रहा है जो नवयुवक किसान और उनकी मायें, और बहनें और बीवियाँ गा रही हैं। फिर अचानक वे चुप हो जाते हैं। चुपचाप मकई के दानों को अलग कर रहे हैं। हवा के बहुत ही हलके-हलके झोंके आते हैं और मन्नू का सारा वृक्ष साँसें लेता हुआ प्रतीत होता है। कोई आग तापता हुआ बूढ़ा किसान धीरे से कह उठता है—'और गाओ बेटो और गाओ' फिर वह स्वयं ही कोई पुराना गीत शुरू कर देता है। उसे अपने खत्म होते हुए जीवन की बहार याद आ रही है। पीले पीले शोलों की चमक उसकी आँसुओं से भरी हुई आँखों में काँप-काँप जाती है। गाते-गाते गीत के शब्द उसके मुँह में लड़-खड़ा जाते हैं। अब वह चुप हो जाता है और आग के दहकते हुए

हुए महसूस किया कि आँगी वहाँ नहीं है, दूसरे ढेर के पास उसने भुट्टों से दाने अलग करते हुए किसानों से बातें करते-करते इधर उधर आँगी को देखा पर वह दिखाई न दी; तीसरे ढेर पर जाकर एक मनोरंजक कहानी उसने सुनाई जो नगरों के जीवन के सम्बन्ध में थी। उसकी दृष्टि आँगी की खोज करती रही, पर व्यर्थ! चौथे पर जाकर उसने अपनी वायलिन निकाली और एक वेदना-पूर्ण गीत छेड़ा और बाकी ढेरों से उठकर लोग उसी ढेर के पास आकर इकट्ठे हो गये और बटोही की तारोंवाली बंसरी सुनने लगे। उनके चेहरों पर उल्लास था और आश्चर्य भी; पर आँगी कहाँ थी!

आखिर बटोही ने पूछ ही लिया।

एक युवक किसान ने बेपरवाही से कहा—वह खलियान के उस ओर बैठी है। अभी थोड़ी देर हुई अपनी सहेलियों में बैठी गा रही थी, कि फीरोज की बहन ने न जाने उसे क्या कहा, क्यों दिलशाद क्या कहा तुमने कि वह उठकर चली गई और झोली में बहुत-से भुट्टे भरकर ले गई! अब अकेली बैठी दाने अलग कर रही होगी। कौन मनाता फिरे, किरण तू क्यों नहीं जाकर मना लाती।

किरण हँस पड़ी पर उसने कोई जवाब नहीं दिया।

खलियान के दूसरी ओर बटोही ने देखा कि मकई के भुट्टे धरती पर पड़े हैं, और उनके निकट खलियान का सहारा लिये हुए आँगी आधी लेटी हुई है। आँखें अधखुली हैं और चाँद की किरणों ने उसके बालों के गिर्द एक हाला-सा बना दिया है।

आँगी!

आँगी!!

आँगी!!!

पथिक आँगी पर झुक गया। उसने आँगी के सिर को अपनी भुजाओं में ले लिया—क्या बात है आँगी!